भारतीय ग्रंथमाला ; संख्या २३

गाँव की बात

लेखक

भारतीय शासन, नागरिक शिक्षा, भारतीय अर्थशास्त्र,
आदि के रचयिता

भगवानदास केला

प्रकाशक

भारतीय ग्रंथमाला, दारागंज, प्रयाग

दूसरा संस्करण | सन् १९४६ ई० | मूल्य आठ आने

प्रकाशक :—
भगवानदास केला
व्यवस्थापक,
भारतीय ग्रन्थमाला
दारागंज (प्रयाग)

मुद्रक :—
विश्ववाणी प्रेस,
प्रयाग

निवेदन

मैं गांव का हूँ, गांव में जन्मा हूँ, मेरा बचपन वहां ही बीता। शुरू की, बुनियादी शिक्षा मैंने वहां ही पाई। अब भी समय-समय पर गांव में जाकर मैं अपने शहरीपन का बोझ हलका करने की कोशिश किया करता हूँ। गांव मेरे मन के लिए मनोरंजन की जगह, और आत्मा के लिए तीर्थ है; और वह क्या कुछ नहीं है! यदि मैं गांव में ज्यादा नहीं रह सकता तो इसे मैं अपनी लाचारी मानता हूँ, और इसे उस सभ्यता का शाप समझता हूँ, जिसने लिखने-पढ़ने के साधन, डाक, तार, रेल, पुस्तकालय और छापेखाने आदि अकसर शहरों में ही बन्द कर रखे हैं।

मैं गांव का बहुत ऋणी या कर्जदार हूँ; और, खासकर अपने गांव के अध्यापक पूज्यवर श्री० पंडित अयोध्याप्रसाद जी शर्मा का, जिनके चरणों में बैठकर मैंने हिन्दी की वर्णमाला से लेकर पांचवीं कक्षा तक की शिक्षा पायी, और सभ्यता या शिष्टाचार आदि का प्रारम्भिक पाठ पढ़ा। उनके ही सुपुत्र श्री० गौतमप्रसाद जी को उनके शुभ विवाह के अवसर पर भेंट करने के लिए यह पुस्तक सन् १९३८ में लिखी और छपायी गयी थी। अब यह कुछ बढ़े हुए रूप में दूसरी बार प्रकाशित की जा रही है।

गांवों की कई एक समस्याओं का सम्बन्ध वहां वालों की गरीबी से है। यह कहा जा सकता है कि ग्राम-समस्या खासकर आर्थिक है। पर आर्थिक बातों की खुलासा चर्चा हमारे 'भारतीय अर्थशास्त्र' में की गयी है। इस लिए यहां उनका बहुत थोड़े में ही जिक्र करके, दूसरी खास-खास मोटी-मोटी बातों का ही विचार किया गया है।

आशा है, पाठकों को इस छोटी सी पुस्तक से कुछ सोचने-विचारने, और गांवों के प्रति अपना कर्तव्य पालन करने की प्रेरणा मिलेगी।

विनीत

भगवानदास केला

विषय-सूची

गाँव की बात

पहली बात

ग्राम-जीवन से शिक्षा

कुछ विदेशी अधिकारी और दूसरे लेखक यह कहा करते हैं कि भारतवर्ष एक देश नहीं है। यहाँ तरह तरह की भाषाएं, तरह तरह के धर्म और रस्म तथा जुदा जुदा जातियाँ हैं। समय समय पर ऐसी घटनाएँ भी सामने आती हैं, जिनसे समाचार-पत्रों के पाठक समझते हैं कि असल में विदेशियों का कहना सत्य है। यहाँ खास जातियाँ हिन्दू और मुसलमान हैं; ये अक़सर लड़ते-झगड़ते हैं; बकरीद हो या दशहरा, कोई त्योहार पूरे तौर पर शान्ति से नहीं गुजरता, कहीं न कहीं आपस में मारपीट हो जाती है। हिन्दू मुसलमानों के काम में रुकावट पैदा करते हैं, और मुसलमान हिन्दुओं को दुख देते हैं। एक जाति की भाषा हिन्दी है, दूसरी की उर्दू। दोनों की सभ्यता और स्वार्थ अलग-अलग हैं, यहाँ तक कि कुछ मुसलमान स्वाधीनता-दिवस मनाने में भी आनाकानी करते हैं। इन बातों के होते हुए यह कैसे कहा जा सकता है कि भारतवर्ष एक और अखंड है!

इस बात में कहाँ तक सचाई है, इसका विचार करने के लिए हमें किसी खास जगह या किसी खास समय की घटना का अपने मन पर बहुत असर नहीं होने देना चाहिए। गहरे विचार की जरूरत है। यह याद रखना चाहिए कि विदेशी अधिकारी इन बातों का प्रचार करते हैं तो इसमें अकसर उनका स्वार्थ या खुदगर्जी होती है। वे यह चाहते हैं कि यहाँवालों के दिल से एकता और मेलमिलाप के भाव निकल जायँ और भेद-भाव बढ़ता रहे, जिससे यह देश पराधीन बना रहे और विदेशियों की हकूमत कायम रहे।

कुछ आदमी शुद्ध भाव से यानी, बिना किसी खास मतलब के भी भारतवर्ष की अनेकता या फूट की बात कहा करते हैं। उन्हें यहाँ की असली हालत की जानकारी नहीं होती। जिसे वे भारतवर्ष का अनुभव कहते हैं, वह दरअसल कुछ इनेगिने बड़े बड़े शहरों का ही अनुभव होता है। और, समाचारपत्रों में जो घटनाएँ प्रकाशित होती हैं, वे भी अधिकतर नगरों की ही होती हैं। जब कोई पाठक यह पढ़ता है कि किसी त्योहार पर लोगों में दो-चार जगह झगड़ा हो गया तो यह बात उसके मन पर गहरा असर करती है। वह भूल जाता है कि जिन जगहों में झगड़ा हुआ है; उनके कुल निवासियों की भारतवर्ष की जनसंख्या में क्या तुलना है। ऐसे झगड़ों के आधार पर यह कहना कहाँ तक ठीक है कि भारतवर्ष में हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे का सिर फोड़ते रहते हैं!

बात यह है कि इन झगड़ों के अड्डे अकसर कुछ शहर ही

होते हैं और इन्हें करानेवाले कुछ स्वार्थी आदमी होते हैं, जो किसी खास सम्प्रदाय की आड़ लेकर जनता को गुमराह किया करते हैं। लेकिन सोचना चाहिए कि भारतवर्ष तो शहरों का देश नहीं है, यह तो गांवों का देश है। इसकी करीब नब्बे फी सदी आबादी देहातों में है, भारतवर्ष की एकता आदि का निर्णय करने के लिए हमें देहाती जनता का विचार करना चाहिए।

यह लेखक गाँव में जन्मा है इसने वहाँ ही अपनी आयु के पहले दस वर्ष व्यतीत किये हैं। इस समय मुझे कुछ खास कारणों से नगर में रहना पड़ रहा है तथापि मैं गाँव जाने के लिए तरसता रहता हूँ और समय-समय पर वहाँ जाकर अपनी इच्छा पूरी करता हूँ। वैसे भी मुझे ग्राम-जीवन बहुत पसंद है। निदान, गाँवों के बारे में मुझे प्रत्यक्ष अनुभव है, किसी से सुना-सुनाया नहीं। मैंने देखा है कि गाँव में आदमी एक ही प्रकार की भाषा बोलते हैं; उसे देवनागरी लिपि में लिखी जाने पर हिन्दी, और, फारसी लिपि में लिखी जाने पर उर्दू कहते है। हिन्दुओं के त्योहारों में मुसलमान भी भाग लेते हैं, और मुसलमानों की खुशी में हिन्दू भी खुशी मनाते हैं। रक्षा-बंधन के दिन मुसलमान लड़कियां हिन्दुओं को पोंहची बांधती हैं। दिवाली के दिन मुसलमान भी अपने अपने घरों पर रोशनी करते हैं। अनेक हिन्दू मुसलमानों के मकबरों पर शीरनी (मिठाई) चढ़ाते हैं बालक बड़ी उम्र वालों को चाचा, ताऊ या बाबा आदि कहते हैं, चाहे वे किसी जाति या धर्म के क्यों न हों। हिन्दू

मुसलमान एक-दूसरे के दुःख सुख में साथ देते हैं। गाँव के ज्यादातर आदमी मोटा कपड़ा (गाढ़ा) पहनते हैं। इससे, कोई अमीर हो या गरीब, सब में समानता मालूम होती है; वे फैशन या शौकीनी से बचे रहते हैं। फैशन करने वाले को वे 'बाबू' या 'शहरी' कहा करते हैं। निदान, गाँव के हिन्दू मुसलमानों में या दूसरी जातियों में ऐसा कोई भेद भाव नहीं मालूम होता, जिसका विदेशी इतना प्रचार किया करते हैं, और जिसकी बहुधा समाचारपत्र पढ़नेवाले कल्पना किया करते हैं।

ऊपर हमने ग्राम-जीवन की कुछ बातों का जिक्र किया है, इससे भारतीय जनता की ९० फी सदी जनता की स्थिति का अनुमान किया जा सकता है। इसके आधार पर हम दावे से कह सकते हैं कि भारतवर्ष एक और अखंड है। अवश्य ही यह अफसोस की बात है कि आजकल गाँवों को शहरों की हवा लग रही है, और नेतागिरी को कायम रखनेवाले कुछ स्वार्थी आदमी वहाँ साम्प्रदायिकता का रोग फैलाकर हमारी स्वाभाविक एकता को नष्ट करने लगे हैं। परन्तु, इसका भी इलाज हो रहा है। जनता अब बहुत दिन तक मूर्ख नहीं बनायी जा सकेगी, स्वार्थियों की पोल खुलती जा रही है। अस्तु, हमारी आशा के केन्द्र गाँव है। वहाँ बहुत से सुधारों की आवश्यकता है, लेकिन जनता में एकता और मिलाप की भावना बढ़ाने में तो वे रहनुमा या रास्ता दिखानेवाले हैं। एक कवि ने कहा है—

इस गाढ़े वक्त में गाढ़ा ही सब जेबेतन करें।
इन शहरियों को अक्ल यह कोई गँवार दे॥

हम अपने गांववाले भाइयों से सिर्फ़ गाढ़ा यानी खद्दर पहने की ही नहीं, आपस में मेलजोल से रहने, एक-दूसरे के दुःख-सुख में काम आने, और साम्प्रदायिक भेद-भावों से बचे रहने की भी शिक्षा ले सकते हैं; और, हमें यह शिक्षा लेनी चाहिए।

—०—

दूसरी बात
गाँव की याद

कहीं जा बसें; चाहता जी यही है।
रहे सामने, जन्म की जो मही है॥

मैं गांव में जन्मा, और दस साल की उम्र तक वहाँ ही रहा। पीछे मैंने शहर में आकर स्कूल और कालिज में कुछ पढ़ लिया, और मैं राजनीति या अर्थशास्त्र की दो बातें लिखने लग गया तो क्या हुआ! यह बात भुलाई नहीं जा सकती कि मैं गाँव का बहुत ऋणी हूँ; मेरी शुरू की, बुनियादी शिक्षा गाँव में ही हुई है।

अब मैं मातृ-भक्ति और देश-सेवा आदि की कुछ बातें कहता सुनता हूँ तो इसका भी मूल मंत्र गांव में ही सीखा था। वह चित्र अब भी आंखों के सामने है—मैं पाठशाला में, पहली कक्षा में पढ़ता था, अक्षरों की पहिचान हुई तो हिन्दी प्राइमर के अन्त में दी हुई कविता कैसे उत्साह से कंठ करनी चाही; वह पूरी याद नहीं हुई, कुछ अधूरी सी ही याद हो पायी; तो भी बड़ा आनन्द

और अभिमान सा हुआ, और पुस्तक का सहारा ले-लेकर मैंने इसे अपनी माता जी को सुनाया; वे सुनकर बहुत प्रसन्न हुईं और उन्होंने मुझे बहुत प्यार किया। कविता कुछ इस प्रकार थी—

मेरी प्यारी अम्मा, मेरी जान अम्मा।
न कुछ मुझमें थी शक्ति जिस आन अम्मा॥
न अच्छे बुरे की थी पहिचान अम्मा।
तुम्हें तब था छिन-छिन मेरा ध्यान अम्मा॥
मेरी प्यारी अम्मा० ॥ १ ॥

मुझे प्यार से दूध तुमने पिलाया।
थपक प्रेम से तुमने मुझको सुलाया॥
बहुत दिन मुझे गोदियों में फिराया।
मुझे सुख दिया, आप है दुःख उठाया॥
मेरी प्यारी अम्मा० ॥ २ ॥

कभी अपनी गोदी में मुझको खिलाना।
कभी मीठी बातों से मुझको हसाना॥
कभी प्यार करना, गले से लगाना।
न हित तेरा मुझको उचित है भुलाना॥
मेरी प्यारी अम्मा० ॥ ३ ॥

जो दुःख से कभी नींद मुझको न आयी।
सभी रात चिन्ता में तुमने गंवायी॥
कभी औषधि कुछ खिलायी पिलायी।
कभी कोई मीठी सी लोरी सुनायी॥
मेरी प्यारी अम्मा० ॥ ४ ॥

तुम्हीं ने सदाचार मुझको सिखाया।
तुम्हीं ने है मार्ग धर्म्म का बताया॥
तुम्हीं ने है पापों से मुझको बचाया।
तुम्हीं ने है मानस मुझको बनाया॥
मेरी प्यारी अम्मा० ॥ ५ ॥

बहुत तुमने की मेरे साथ भलाई।
मेरे वास्ते बहुत मेहनत उठाई॥
प्रभु आयु-धन मुझको देवे जो भाई।
तुम्हारी मैं दिल से करूं सेवकाई॥
मेरी प्यारी अम्मा० ॥ ६ ॥

इस समय भी पाठशाला में बालक तथा बालिकाएँ यह कविता सीखती हैं, और मुझे इसके सुनने का बड़ा शौक है। आह! "तुम्हारी मैं दिल से करूं सेवकाई" यह पंक्ति मुझे अपने सारे जीवन पर नजर डालने को कहती है। मैं माता जी की क्या सेवा कर पाया! जब मैं कुछ योग्य हुआ था, तब उनका देहान्त हो गया; हमेशा के लिए वियोग हो गया! परन्तु उन्होंने मुझे दर्शन देकर यह समझा दिया कि मा का ही विराट् स्वरूप जननी जन्मभूमि है; देश की सेवा, मातृभक्ति का ही दूसरा रूप है।

अब गाँव में मेरी माता नहीं, भाई बहिन आदि भी नहीं, सगा सम्बन्धी नहीं, जाति बिरादरी नहीं। घर गिर-गिरा गया, वह भी नहीं। फिर गाँव में क्या लगाव? मेरे कुछ शहरी मित्र और रिश्तेदार आदि यह पूछा करते हैं। उन्हें क्या जवाब

दिया जाय ! ऐसे प्रश्न करनेवालों को किसी उत्तर से सन्तोष होना कठिन है। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि गाँव में रिश्तेदार आदि नहीं हैं तो न सही; गाँव तो है। वहाँ के खेत, मार्ग, तालाब, खेल के मैदान, मन्दिर, पाठशाला, वहाँ के वृक्ष, वहां का बन, नदी, और जमुना जी तो है, जिनका मैंने समय समय पर उपयोग किया है, जहाँ मैंने बचपन में हर्ष और शोक, शान्ति और उद्वेग की अनेक घड़ियां बितायी हैं। फिर वहाँ जुदा-जुदा जातियों के अनेक आदमी हैं, जिन्हें मैंने बचपन से भाई बहिन आदि कहना सीखा है, कुछ ऐसे बड़े बूढ़े भी हैं, जिन्हें मैं चाचा ताऊ आदि कहता आया हूँ, और जो मुझे अपना बालक मानते हैं। इनके अलावा वहाँ मेरे वे लंगोटिया यार हैं, जिनके व्यवहार में आधुनिक ढंग का शिष्टाचार चाहे न हो, पर उससे भी बढ़कर बहुमूल्य हार्दिक प्रेम है। इसलिए जब कभी मुझे अवसर मिल जाता है, मैं गाँव हो आने को बेचैन रहता हूँ।

पिछले पच्चीस वर्ष से मैं बृन्दाबन या प्रयाग में रह रहा हूँ। जो आदमी प्रयाग और बृन्दाबन आदि की तीर्थ-यात्रा करता है, वह अपने सङ्गी-साथियों में बड़ा सौभाग्यशाली समझा जाता है। मेरा तो यहाँ लम्बे समय से निवास ही है; इससे बहुत से लोगों की निगाह में यह मेरा बड़ा ही सौभाग्य होसकता है। परन्तु जिस तरह श्रद्धा भक्ति वाले आदमी बहुत तकलीफ उठाकर तीर्थ-यात्रा की तैयारी करते हैं, और उसमें सफल होने पर अपने को धन्य मानते हैं, मैं अपने लिए तीर्थ-यात्रा का स्थान अपने जन्म का गाँव बाबैल मानता हूँ। और, तीन-चार वर्ष में

जब भी कभी मुझे वहाँ जाने की सुविधा मिल जाती है, मैं अपने आपको बड़ा भाग्यवान मानता हूं। जिस तरह अनेक आदमी अपने जीवन का अंतिम भाग तीर्थ-वास में व्यतीत करना चाहते हैं, मेरा लक्ष्य ग्राम-वास है। यदि किसी प्रकार विविध बंधनों से छुटकारा पाकर मैं अपना कुछ जीवन गाँव में बिता सकूं, तो मुझे बहुत सन्तोष हो। हाँ तीर्थ-वास में आदमी पूजा-पाठ हरिनाम-स्मरण, संकीर्तन आदि करते हैं; मेरा इष्ट जीता-जागता ग्रामवासी है; उसकी सेवा सुश्रुपा, मेरी पूजा पाठ होगी, गाँव के बालक बालिकाओं के उत्थान के स्वप्नों में मेरे लिए स्वर्ग का आनन्द होगा।

तीसरी बात

ग्राम चिन्ता

भारतवर्ष गाँवों का देश है, यहाँ के ज्यादातर आदमी गाँवों में रहते हैं। इस देश की कुल आबादी उनतालीस करोड़ है, जिसमें से गाँव वाले करीब चौतीस करोड़ हैं। जब तक गाँवों की काफ़ी उन्नति नहीं होती, भारतीय राष्ट्र उन्नत नहीं कहा जा सकता। शिक्षा-प्रचार, स्वास्थ्य-सुधार, दस्तकारी या उद्योग धंधों की वृद्धि आदि कोई भी आन्दोलन राष्ट्र-व्यापी नहीं कहा जा सकता, जब तक कि हमारे गाँवों से उसका गहरा सम्बन्ध न हो। शासन-सुधार की भी मुख्य कसौटी यही है कि उससे गाँववालों को सुख और उन्नति का अवसर मिलता है या नहीं। यदि

गाँववाले आधे नङ्गे, अधभूखे और अनपढ़ रहते हैंतो किसी भी शासन-सुधार से उद्देश्य या मकसद सिद्ध नहीं हो सकता, चाहे हमारे कौंसिलों और असेम्बलियों के भवन कितने ही विशाल या आलीशान क्यों न हों; और चाहे देहली, कलकत्ता या बम्बई आदि में कितना ही शाही ठाटबाट क्यों न हुआ करे।

ये बातें सब मानते हैं। तो भी राष्ट्रीय जागृति में गाँवों की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया। जो कुछ चर्चा हम गाँवों की आज दिन करते हैं, वह खासकर पन्द्रह बीस वर्ष से होने लगी है। सरकार ने अभी तक गाँवों का उपयोग वहाँ से लगान या मालगुज़ारी वसूल करने में किया। सरकारी आमदनी का ज्यादा हिस्सा उन नगरों में खर्च हुआ, जो अफ़सरों और अहलकारों के सदरमुकाम रहे। भारतीय नेताओं के आन्दोलन और राष्ट्र-सभा या कांग्रेस की देखादेखी भारत-सरकार भी कुछ समय से ग्राम-सुधार का कार्य करने लगी। असल में इस दिशा में अभी ठोस काम बहुत ही कम हुआ।

ग्रामों का सुधार कैसे हो? वहाँ का धन और बुद्धि वहाँ काम न आकर बाहर निकलता जा रहा है। वहाँ की आय सरकार के तरह तरह के कामों में खर्च होती है, जिसका ज्यादातर लाभ नगरों को मिलता है। गाँव के जिस आदमी के पास दो पैसे हो जाते हैं, वह वहाँ रहना नहीं चाहता, उसे उस पैसे से अपने शौक पूरा करने के साधन नगर में मिलते दीखते हैं; बस, वह धीरे धीरे नगर-निवासी बन जाता है। इसी

प्रकार जो आदमी कुछ पढ़-लिख लेता है, उसे अपनी विद्या-बुद्धि के उपयोग का अवसर शहरों में मिलता है, फिर वह गाँव में रहकर ग्रामीण या गँवार लोगों में अपनी गिनती क्यों कराये ! सभ्य समाज के आदमियों को गाँव में रहना नापसन्द है और एक सजा भोगने के बराबर मालूम होता है।

गाँवों की यथेष्ट चिन्ता न सरकार ने की, और न स्वयं गाँववालों ने ही की। इसका फल यह हुआ कि खासकर पिछले डेढ़ सौ वर्ष में उनका भारी ह्रास होता गया। ग्राम-जीवन से सुखदायी कुदरती जीवन की कल्पना नहीं होती, बल्कि ऐसा रहनसहन सामने आता है कि मकान छोटे-छोटे और कच्चे हैं, पास ही कूड़े के ढेर लगे हैं। सफाई और स्वास्थ्य रक्षा का प्रबन्ध नहीं है। शिक्षा के नाम पर प्राइमरी स्कूल भी हो तो ग़नीमत है। बहुत से स्थानों में वह भी नहीं है। जच्चाखाना (प्रसूति-गृह) और अस्पताल दूर-दूर तक नहीं हैं। बच्चों का जन्म राम-भरोसे होता है, और बीमारी में लोगों को अधिकतर भाग्य का आसरा लेना होता है। वहाँ से बाहर जाने के लिए दूर-दूर तक अच्छी सड़कों का अभाव है, रेल तार की बात दूर रही, डाकखाना भी बहुधा कई-कई मील के फ़ासले पर है। क्या अब हम ग्रामों की चिन्ता न करें ? और, ग्राम-चिन्ता बिना देश का सुधार कैसा !

गाँवों के सम्बन्ध में नीचे लिखी बातें विचार करने योग्य है :—

१—ग्राम-सुधार का काम सिर्फ उपदेश देने से नहीं हो

सकता। सुधारकों को चाहिए कि देहातों में जाकर, वहाँ के आदमियों से हिलमिल कर रहें, तभी वे उन्हें धीरे-धीरे ऊपर उठा सकेंगे।

२—ज्यादातर गाँववाले गरीब और कर्जदार होते हैं। उन्हें ऐसे काम सुझाए जाने चाहिएँ, जिन्हें वे अपनी फुरसत के समय कर सकें। उनमें उपयोगी घरू उद्योग धंधे, कपास ओटने, सूत कातने, खद्दर बुनने, शाक भाजी या फल फूल लगाने आदि का प्रचार करना चाहिए। उन्हें मितव्ययिता या किफायतसारी का अभ्यास कराना चाहिए, और तरह तरह की सहकारी (कोओपरेटिव) समितियाँ कायम करके उनमें सहकारिता का भाव बढ़ाना चाहिए, जिससे खेती आदि के लिए आवश्यक साधन आसानी से मिल सकें, उनकी आमदनी बढ़े, और कुछ बचत भी होती रहे, जो ज़रूरत के वक्त काम आवे।

३—हरेक बड़े गाँव में, और छोटे छोटे गाँवों के हरएक समूह में एक पुस्तकालय और वाचनालय कायम होना चाहिए। मंदिरों या पंचायती स्थानों में यह काम आसानी से हो सकता है। हाँ, गाँव में पुस्तकें या अखबारों का इन्तजाम होना ही काफी नहीं है, ऐसे उत्साही स्वयंसेवकों की आवश्यकता है जो गाँववालों को किताबें और अखबार पढ़ कर सुनाया करें, और उनका मतलब समझाया करें। इसके अलावा गाँव में हर रोज नहीं तो हर सप्ताह अच्छी अच्छी कथाएँ कही जाया करें, या उपयोगी विषयों के व्याख्यान दिये जाया करें। कभी कभी मेजिक लालटेन से भी ज्ञान बढ़ानेवाली बातें समझायी जाया करें।

४—गाँवों में साधारण पाठशालाओं के अलावा रात्रि-पाठशालाओं का भी इन्तजाम होना चाहिए। गाँव वालों को नागरिकता तथा कानून की मोटी मोटी रोजमर्रा काम आने-वाली बातों की भी शिक्षा मिलनी चाहिए।

५—गाँवों में सफाई रखने के बारे में बहुत सी बातें ऐसी है, जिनके लिए धन की खास ज़रूरत नहीं; लोगों की आदतें और स्वभाव सुधरने से ही बहुत काम हो सकता है। इसकी कोशिश की जानी चाहिए।

६—देहातों में अकसर बीमारियों का बड़ा जोर रहता है। रोगियों के लिए खासकर होम्योपेथी या वैद्यक की सस्ती और अच्छी दवाइयों की व्यवस्था रहनी चाहिए।

७—लोगों में मुक़दमेबाज़ी का बड़ा व्यसन लगा होता है। बात बात पर मुक़दमा चलता है और धन नाश होता है। इस-लिए उन्हें समय-समय पर मेलजोल से रहने तथा आपसी झगड़ों का खुद ही, पंचायत द्वारा, निपटारा करने का परामर्श दिया जाना बहुत उपयोगी है।

८—बहुत से स्थानों में, एक गाँव से दूसरे गाँव तक सड़कें नहीं हैं। ऊंचे नीचे, टेढ़े-मेढ़े, पथरीले, रेतीले, कंकरीले या दलदल वाले रास्ते हैं। इससे लोगों को आने जाने तथा व्यापार करने में बड़ी कठिनाई होती है। ज़िला-बोर्डों तथा पंचायतों द्वारा रास्ते ठीक बनवाये जाने चाहिएँ।

९—लोगों में विवाह शादी, जन्म मरण आदि के सम्बन्ध में बहुत सी सामाजिक कुरीतियां प्रचलित हैं। सुधारकों को

अपना जीवन तथा व्यवहार आदर्श बनाकर, दूसरों के लिए अच्छे उदाहरण रखने चाहिएँ।

१०—अकसर ज़मीदारों और किसानों में सन्तोषप्रद सम्बन्ध नहीं होता। इन्हें समझना चाहिए कि दूसरे के हित में अपना भी कल्याण है। इस प्रकार इन्हें एक दूसरे का सहायक और शुभचिन्तक बनना चाहिए।

११—बहुत से किसानों के पास खेती के लिए भूमि के टुकड़े जुदा-जुदा और दूर-दूर के स्थानों में होते हैं। उनसे खेती करने से बहुत सा समय और धन व्यर्थ जाता है। आवश्यकता है कि वे चकबन्दी के लाभ समझें, और सब किसान आपस में मिलकर ऐसी व्यवस्था करलें, जिससे हर एक किसान की भूमि एक जगह होजाय, और काम आसानी से हो सके।

१२—अनेक देहातों में रेल और तार आदि की तो बात दूर रही, डाकखाने तक नहीं होते। लोगों को अख़बार या समाचारपत्र आदि तो क्या, अपनी चिट्ठियाँ भी रोज़ नहीं मिल सकतीं, कई-कई दिन बाद मिलती हैं। डाक विभाग की ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि प्रत्येक गाँव की डाक उसी दिन बटजाया करे।

१३—पशुओं के इलाज के लिए हर ग्राम-समूह में एक जानवरों का अस्पताल होना चाहिए, जहाँ गाँव वालों की आसानी से पहुँच हो सके। इसी तरह पशुओं की नस्ल सुधारने के लिए अच्छे सांडों का इन्तज़ाम रहना चाहिए।

१४—पशु-रक्षा के लिए स्थान-स्थान पर पशुशाला और डेयरी-फ़ार्म आदि की व्यवस्था होनी चाहिए। इसके अलावा हर गाँव में उसकी ज़रूरत के अनुसार चरागाह या गोचर भूमि छोड़ी जानी चाहिए।

इन बातों की कुछ और चर्चा आगे 'हमारा आदर्श गाँव' लेख में की जायगी। पहिले ग्राम-सुधार के मौजूदा ढंग को देखें।

—:०:—

चौथी बात

यह कैसा ग्राम-सुधार !

एक बार (सन् १९३८ में) जिस दिन मेरा अपने गाँव बाबैल (तहसील पानीपत) जाना हुआ, उस दिन वहाँ ग्राम-सुधार का जलसा होनेवाला था। वह गाँव ग्राम-सुधार का एक केन्द्र था। मैं सवेरे के वक्त पहुँचा था। देखा, चौक (मैदान) में झाड़ू लगी हुई है। कुएं के पास के पानी के गढ़ों में मिट्टी भरी है। मकानों की दीवारों पर खड़िया से चतुर्भुज या चौकोने निशान किये हुए हैं कि इन स्थानों पर दीवार फोड़ कर खिड़कियाँ लगायी जायँ। अनेक स्थानों में उर्दू में तारकोल से आदर्श वाक्य लिखे हुए हैं—साफ रहो, मक्खियों से बचो, टीका लगवाओ, खाने की चीजें ढक कर रखो, इत्यादि।

वैसे उन दिनों पाठशालाओं की छुट्टियाँ थीं परन्तु हलके भर के अध्यापकों को सूचना दी गयी थी कि विद्यार्थियों के साथ बाबैल हाजिर हों। अध्यापक बिचारे नौकर ठहरे, हुक्म

न बजा लावें तो बेकारी के जमाने में गुजर कैसे हो। सब ने आज्ञा-पालन किया। जिस अध्यापक का गाँव में जिस किसी के यहाँ कुछ सम्बन्ध था, उसने वहाँ ठहरने का प्रबन्ध किया। विद्यार्थियों में कितने ही ऐसे रह गये, जिनके लिए खाने और रहने की उचित व्यवस्था न थी। उन बेचारों ने चौपाल और मन्दिर की शरण ली।

कुछ गाँवों के आदमी अपने पशुओं को प्रदर्शनी के लिए लाये। उन्हें बड़े बड़े इनामों की आशा थी। इसलिए उन्होंने पशुओं को दिन भर धूप में रखा, और उनके चारे-पानी की कमी भी सहन की।

कुछ छोटे-छोटे कर्मचारी तो कई दिन पहले ही आ गये थे। उस दिन तो तहसीलदार, जिले का पंचायत-अफसर, मदरसों का जिला इन्स्पेक्टर, और हेल्थ आफिसर (स्वास्थ्य-अफसर) आदि भी आ पहुँचे थे। जलसे के सभापति खुद डिप्टीकमिश्नर साहब होनेवाले थे। कहा गया कि वे दोपहर बाद आवेंगे। उन्हें दिया जानेवाला अभिनन्दन-पत्र उर्दू में काफी तादाद में पहले ही छपवा मँगाया था। अफसरों के लिए फल, तश्तरी, काँच के गिलास, प्याले, सोडावाटर आदि का प्रबन्ध ऐसा कर लिया गया था कि किसी को मेहमानदारी या खातिर-तवाजो की कुछ शिकायत न रहे। इससे गांववालों को भी यह जान लेने का मौका मिला कि अफसर लोग क्या-क्या चीजें खाते पीते हैं, और उनके भोजन की व्यवस्था किस प्रकार होती है। लम्बरदार और चौकीदार आदि तो खाने का सामान जुटाने

में लगे ही थे, पुलिस के सिपाही भी दुकानों पर आ-आकर अपनी मांग करते थे। कोई कहता—लाला जी ! और तो सामान सब पहुँच गया, केवल पाव भर घी और चाहिए। कोई कहता—लाला जी ! आप लोगों ने सामान बहुत बढ़िया दिया, बस थोड़ा बूरा (चीनी) और चाहिए। कोई कहता—लालाजी ! गरम मसाला तो मंगा दीजिए। पैसे की फिकर न करें, तहसील-दार साहब कोई चीज मुफ़ नहीं लेते। इस प्रकार यह सिलसिला देखकर मेरे मनको बड़ा कष्ट हुआ, पर मुझे यह सब देखना ही पड़ा क्योंकि मैं एक महाजन (वैश्य) भाई के यहाँ ठहरा हुआ था। खैर, मैंने यह सोचकर सन्तोष किया कि ग्राम-सुधार का बड़ा काय होनेवाला है तो गांववालों को थोड़ा कष्ट भी सह लेना चाहिए। होते-होते तीसरा पहर हुआ। अब उस महान काय की बात लीजिए। रस्साकशी हुई, कुश्ती हुई; पशुओं की जाँच हुई। इनाम तो साधारण तौर से आठ-आठ आने, या एक रुपया ही मिला, पर, इनाम पानेवालों को यह खुशी हुई कि आखिर इन अफसरों के सामने हम अव्वल या दोयम ठहराये गये।

दिन ढलने को आया, पर डिप्टी कमिश्नर साहब नहीं पधारे। जलसे की कार्रवाई पूरी करनी आवश्यक थी। सार्व-जनिक सभा की गयी। गैस की रोशनी हुई। यह घोषणा की गयी कि डिप्टी कमिश्नर साहब को जिले भर की फिक्र रहती है, उन पर काम बहुत कम है। उनकी इस जलसे में आने की हार्दिक इच्छा थी, पर समय न होने के कारण वे तशरीफ न ला सके। जो हो; जलसे में ग्राम-पञ्चायत की रिपोर्ट पढ़ी

गयी; कुछ ग्रामीण भजन सुनाये गये, सफाई-स्वास्थ्य आदि पर भाषण दिये गये। एक भाषण डिप्टी कमिश्नर साहब की सर्व-प्रियता और व्यवस्था के बारे में भी हुआ। उनके न आने पर भी, उनको दिया जानेवाला अभिनन्दन-पत्र पढ़कर सुनाया गया, और पीछे बाँटा गया। बीच बीच में लोगों ने तालियां भी बजायीं। इस तरह जलसे की कार्यवाही समाप्त हुई !

मैंने आगे पीछे गांववालों को यह कहते सुना था कि यह ग्राम-सुधार काहे का है, यह तो ग्राम-बिगाड़ है ! जलसा खत्म होने पर मुझे भी यह मानना पड़ा। मैंने विचार किया कि यह जलसा गांववालों को कितना महँगा पड़ा है, चाहे इसका खर्च अफसरों के वेतन और भत्ते के रूप में सरकारी खजाने से दिया गया हो, या गांववालों ने ज़बरदस्ती के अतिथि-सत्कार या मेहमानदारी के रूप में किया हो।

दिन छिपा। रात का समय शुरू होने पर गांववालों को कुछ और कटु अनुभव करना पड़ा। रात में अफ़सरों को इसी गांव में रहना था। यह सोचकर अफसरों के डेरों के लिए कुछ लालटैनों का प्रबन्ध पहले से कर लिया गया था। पर गांव की रात शहर की रात से जुदा होती है—शहरों में सड़कों और रास्तों पर बिजली की नहीं तो लालटैन की रोशनी होती है। वहां काम करनेवाले आदमियों को गाँव में आने पर 'हाथबत्ती' की ज़रूरत होती है। गांव भर में इने गिने आदमियों के यहां लालटैन होती है, वहाँ इतनी लालटैनें कहां, जो इन शहरियों की ज़रूरत पूरी कर सकें ? अरदली अपना मतलब निकालने

के लिए कहते थे—अजी लाला साहब ! आप जैसे आदमियों के यहा से भी निराश जायेंगे तो फिर लालटैन कहां मिलनेवाली है ! अस्तु, गाँववालों ने स्वयं कष्ट उठाकर भी इनके लिए कुछ लालटेने दीं। अरदलियों ने भी जब देखा कि और अधिक नहीं मिल सकतीं, तो जितनी मिलीं, उनसे ही सन्तोष किया।

अब एक समस्या का सामना और भी करना था। अफ़सरों को और उनके आदमियों को भी, सोने के लिए चारपाइयां चाहिएँ ; और कुछ को तो बिस्तर भी। गांव में आज मेहमानों की भीड़ थी। किसी किसी के यहां तो एक दर्जन से भी अधिक अध्यापक और विद्यार्थी ठहरे हुए थे। किसी साधारण गृहस्थ के यहाँ इतनी चारपाइयां कैसे हो सकती हैं, जो इतने मेहमानों को दे सकें। जैसे-तैसे बेचारे अपना काम निकालने की सोच रहे थे, इतने में चपरासी पहुँचता है—अजी लाला जी !...... साहब के लिए एक चारपाई तो दीजिए। उससे कहा जाता है, भाई ! उनके लिए तो चारपाई भेज चुके हैं। चपरासी जवाब देता है—अजी लाला जी ! भला वह चारपाई उनके लायक है ! कुछ तो खयाल किया होता। लाला जी परेशान हैं। जब कुछ उपाय नहीं सूझता तो अपनी बेगार दूसरों के सिर टालने के लिए कहते हैं—देखो ! अमुक के यहाँ जाओ, वहां आपकी मरजी के मुताबिक चीज़ मिलेगी।

अब बिस्तरों के बारे में जो गुज़री, उसका पाठक स्वयं अनुमान करलें। हमारे कुछ अफसर गाँव में जाते समय यह भी याद रखने का कष्ट नहीं उठाते, कि गाँववालों के पास प्रायः

अपने लिए भी काफी बिस्तर नहीं होते, तब इन अफ़सरों के लिए सफेद चद्दर और अच्छे तकियेवाले बढ़िया बिस्तर कहां से लावें; चपरासी चाहे खुशामद करे, और चाहे धमकी दे।

अस्तु, ग्राम-सुधार के जलसे का दिन गांववालों के लिए जैसी मुसीबत का बीता, रात उससे भी अधिक कष्ट की रही। आखिर, सबेरा होने पर जब लोगों ने देखा कि कुछ अफ़सर तो धूप तेज़ होने से पहले ही रवाना होनेवाले हैं, और जो शेष रहे, वे तीसरे पहर चले जायेंगे, तो उनकी जान में जान आयी। बेचारे लम्बरदार और चौकीदारों को तो अब भी कुछ काम करना शेष था। बहुत सी चीजें जहां-तहां से मांगकर या किराये पर लायी गयी थीं, उन्हें जहां का तहां पहुंचाना था; जो चीजें किराये पर या मूल्य से आयी थीं, उनका किराया या मूल्य चुकाना था; और अन्त में देखना था—इस सब खर्च का कितना हिस्सा तो सरकारी हिसाब से चुक जाता है, और बाकी कितना भार गांव वालों को आपस में बांटना होता है। मन में बारबार यह विचार आता है, कि यह कैसा ग्राम सुधार है!

—:—

पाँचवी बात

गाँव का अध्यापक

हम सब भारतवर्ष की उन्नति या तरक्की चाहते हैं। देश की उन्नति का मतलब है, वहां के आदमियों की अच्छी जिन्दगी। इसके लिए शिक्षा की खास जरूरत होती है। हमारे हर एक गांव में पाठशाला होनी चाहिए, ऐसा कोई भी गांव न होना चाहिए जहां से एक मील तक कोई पाठशाला न हो, और, शिक्षा के सम्बन्ध में सिर्फ पढ़ाई की पुस्तकें या पाठशाला और स्कूल आदि की इमारतों का ही महत्व नहीं होता, उसका मुख्य आधार है, शिक्षक या अध्यापक। विद्यार्थियों का जीवन अच्छा बनना, और उनके गुणों का विकास होना बहुत-कुछ उन अध्यापकों के चरित्र, स्वभाव या व्यवहार पर निर्भर है, जो उन्हें शुरू में पढ़ाते हैं।

यह बात शहरों में भी लागू होती है, और गांवों में भी। हाँ, शहरों में उतनी लागू नहीं होती, जितनी गांवों में। बात यह है कि शहरों के स्कूलों में विद्यार्थियों का सम्बन्ध कई कई मास्टरों से रहता है। अकसर यह सम्बन्ध सिर्फ पढ़ाइ के दिनों में, और ज्यादहतर पढ़ाई के ही घंटों में होता है। साल में सब मिलाकर लगभग चार महीने की छुट्टियाँ हो जाती हैं। जब छुट्टी नहीं होती, तब भी अध्यापक और विद्यार्थी का मिलना जुलना स्कूल के इनेगने घंटों में ही तो होता है। सालाना इम्तिहान हुआ, विद्यार्थी अगली क्लास में गया, बस, उसका पुराने अध्यापक

से सम्बन्ध छूट कर नये से कायम हो जाता है। दूसरी तीसरी क्लास के बाद तो विद्यार्थी का किसी अध्यापक से दिन में सिर्फ़ एक-दो घन्टे का ही सम्बन्ध रहता है। घन्टा पूरा हुआ, चलो दूसरे मास्टर के पास। इस तरह बालक को हर रोज़ कई-कई मास्टरों से काम। अकसर सब का स्वभाव अलग-अलग होता है; किसी को एक तरह की बात पसन्द होती है, किसी को दूसरी तरह की। विद्यार्थी के जीवन पर किसी एक अध्यापक की खास छाप नहीं पड़ती।

पर गांव की बात दूसरी है। वहां एक ही अध्यापक बालकों को बहुत समय तक पढ़ाता है। पाठशाला में छुट्टियां कम होती हैं; और, जो अध्यापक गांव में ही घर बनाकर रहने लग जाता है, उसके लिए छुट्टियां होने से कोई अन्तर नहीं आता। वह कई वर्ष तक अपने विद्यार्थियों से हिला-मिला रहता है। वह उनके दुख सुख में, हर्ष और शोक, या खुशी और रंज में, तीज-त्यौहार और जल्सों में भाग लेता है। इस तरह अध्यापक और विद्यार्थी का जीवन बहुत-कुछ मिल जाता है। गांव का जो अध्यापक अच्छे चालचलन और स्वभाव का हो, मीठा बोलने वाला हो, दूसरों से प्यार और सहानुभूति रखता हो, और सेवा-भाव वाला हो, वह तो विद्यार्थियों का 'पितु, मातु, सहायक, स्वामि सखा' सभी कुछ हो जाता है। जिन बालकों को ऐसा योग्य अध्यापक मिल जाय, वे धन्य हैं; और, जिस गांव में ऐसा हितैषी सेवक रहने लगे उसका परम सौभाग्य है।

एक उदाहरण

मिसाल के तौर पर यहां पंडित अयोध्या प्रसाद जी का थोड़ा सा परिचय दिया जाता है, जिनके चरणों में बैठकर मुझे पांच वर्ष शिक्षा पाने का सौभाग्य मिला है, और जिन्होंने हमारे गांव की पच्चीस वर्ष तक सेवा की है।

गुरु जी का प्रारम्भिक जीवन और शिक्षा—श्री गुरु जी श्रीमान कृष्णचन्द्र जी शर्म्मा के सुपुत्र हैं। आप का जन्म मिती चैत्र शुक्ला अष्टमी सं० १९२४ वि०, बुधवार को हुआ था। आप जोड़िया भाई थे। आपके भाई का शुभ नाम श्री विद्याधर जी था। आपके जन्म के दो साल बाद ही आपकी माता का स्वर्गवास हो गया था। आप दस साल की आयु तक घर पर हिन्दी और संस्कृत पढ़ते रहे। पश्चात् आप महेन्द्र कालिज, पटियाला, में दाखिल हो गये। सम्वत् १९४४ वि० में आपने मिशन स्कूल, सहारनपुर, से मिडल पास किया। तदनन्तर, आप एञ्जिनियरिंग कालिज, रुड़की, में दाखिल होगये। परन्तु वहां का खर्च चलाने में असमर्थ होने के कारण, आपको वह संस्था शीघ्र ही छोड़ देनी पड़ी। इसी वर्ष आपका विवाह हुआ, पर आपकी पत्नी का थोड़े समय बाद ही देहान्त हो गया। आपका दूसरा विवाह श्रीमती भोली देवी से हुआ, जिनके सम्बन्ध में आगे लिखा जायगा।

गुरु ज़ी और हमारा गांव—गुरुवर पण्डित अयोध्या-प्रसाद सम्वत् १९४८ वि०, अर्थात् सन् १८९१ ई० में हमारे गांव बाबैल में शिक्षक होकर आये। यह गांव पंजाब के करनाल ज़िले में, और पानीपत तहसील में है; और पानीपत के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान से पूर्व दिशा में छः मील है। नज़दीक शहर, रेलवे स्टेशन, और तारघर आदि पानीपत ही है। अब तो कुछ वर्षों से डाकखाना भी वहीं है, पहले डाकखाना गांव में था। पानीपत से गांव जाने

के लिए कच्चा रास्ता है।

गांव में मुसलमानों की संख्या बहुत कम है, ज़्यादातर आबादी हिन्दुओं की है। हिन्दुओं में ब्राह्मण, बनियों और जाटों आदि की अधिकता है, यों सभी जातियों के आदमी हैं। गांव में उस समय एक शिवालय के अतिरिक्त एक मन्दिर था; सब मोहल्लों के सवर्ण हिन्दू वहां ही दर्शन तथा संध्या उपासना करने आते थे। अब तो कई मन्दिर बन गये हैं। हरेक मोहल्ले में एक-एक चौपाल चिरकाल से है, ये प्रायः बारात ठहराने, या सार्वजनिक मनोरंजन, खेल-तमाशों के काम आती हैं। दूसरे समय में जमीदार आदि वहां हुक्का पिया करते हैं।

गांव से लगभग एक मील पर जमुना बहती है। पानीपत की तरफ के आदमी जमुना-स्नान करने के लिए आते हैं, तो गांव में से होकर ही रास्ता है। इस प्रकार जमुना के कारण इस गांव का शहर से कुछ सम्बन्ध बना रहता है। गांव के कुछ आदमी तो हर रोज़ जमुना नहाने जाते हैं; रविवार, एकादशी, पूर्णमासी या अमावस्या के दिन तो जमुना के किनारे पर खासी भीड़ रहती है। इस तरह जमुना का इस गांव के जीवन पर खासा प्रभाव है।

गांव की पाठशाला—हमारा गांव सम्भवतः पञ्जाब भर में अकेला गांव था, जहां बहुत वर्षों से पांचवीं क्लास (अपर प्राइमरी) तक की पूरी पढ़ाई हिन्दी में होती थी। अब तो यह उर्दू का मदरसा बन गया है; इसमें छः कक्षाएं हैं, तीसरी तथा चौथी कक्षा में हिन्दी एक दूसरी भाषा के रूप में ली जा सकती है। जिस समय श्री० गुरू जी हमारे गाँव की पाठशाला में शिक्षक होकर आये, उस समय उसमें एक ही अध्यापक होता था। पीछे, जब दूसरे अध्यापक की व्यवस्था हुई तो वह सहायक अध्यापक के रूप में रहा, और श्री० गुरू जी मुख्याध्यापक।

गुरूजी का हमारे घराने से घनिष्ठ सम्बन्ध--ऐसा कहा जाता है कि हमारे पूर्वज जब जैसलमेर को, अधिकारियों से कुछ मत-भेद होने के कारण, छोड़कर, यहां गांव में आये तो काफी धन सम्पत्ति साथ लाये थे; और, अपने शान्त स्वभाव और सद्व्यवहार से भी गांववालों को सहज ही आकर्षित कर सके थे। मालूम होता है कि जिस समय श्री० गुरूजी इस गांव में आये, हमारे घराने की माली हालत तो मामूली थी, पर मान मर्यादा और प्रतिष्ठा काफी थी। गुरूजी का हमारे परिवार से सम्बन्ध बढ़ता ही गया। मेरा जन्म सन् १८९० ई० का है; इसके अगले वर्ष, जब कि गुरूजी गांव में आये, मेरे पिता जी का देहान्त हो गया। मेरे ज्येष्ठ भ्राता श्री० बाल-मुकुन्द जी श्री० गुरूजी की उम्र के थे, उनसे आपका मेलजोल और भाईचारा होगया। श्री० गुरूजी की मेरे चचा रायबहादुर, 'पंडित' लक्ष्मीचन्द जी से भी बड़ी मित्रता थी, जो कि हमारे कुटुम्ब में सबसे प्रसिद्ध प्रतापी सज्जन थे। पीछे, ये अपने परिवार के साथ मेरठ रहने लगे। इधर के माहेश्वरी वैश्यों में ये ही सबसे पहले अङ्गरेजी शिक्षा पाकर सिविल एञ्जीनियर जैसे ऊँचे पद पर पहुंचे।

दुख में धैर्य-प्रदान—सन् १८९४ में मेरे सबसे बड़े भाई श्री० बालमुकुन्द जी का देहान्त हो गया। पीछे मेरी बहिन का भी स्वर्ग-वास हो गया। मेरे बिचले भाई श्री० किशनलाल जी को पढ़ाने के लिए श्री० चचा लक्ष्मीचन्द जी मेरठ लेगये। अब हमारे घर में मेरे सिवाय मेरी माता तथा भौजाई ही थी। श्री० गुरूजी ने इन्हें उस शोक के समय धीरज बँधाने में अपना कर्त्तव्य ऐसा निभाया, जैसा संसार में बहुत-कम आदमी निभाते हैं। मेरा दिन भर घर पर रहना अच्छा न समझ, आपने मुझे पाठशाला में भर्ती करा दिया। थोड़े दिन में मैं हिन्दी पढ़ने लग गया। मेरी भौजाई को कुछ अक्षर-ज्ञान था। शाम को पाठशाला की छुट्टी होती तो गुरूजी हर रोज

हमारे घर आते । मैं, मेरी माताजी और भौजाई एक जगह बैठ जाते और गुरूजी मुझसे विष्णु-सहस्रनाम की कुछ पंक्तियां पढ़वाते, और मैं उन पंक्तियों को अपनी भौजाई से कहलवाता । इस प्रकार मेरी बड़ी भौजाई धीरे धीरे विष्णु-सहस्रनाम का पूरा पाठ करने लगीं। श्री० गुरूजी ने महाभारत आदि की कथाएं और दृष्टांत सुनाकर हमें वे दुख के दिन काटने में बहुत मदद दी ।

गुरूजी की उपदेश-भरी बातों को अच्छी तरह समझने की योग्यता मुझमें कहां थी ! फिर भी मैं आपके पास ऐसा बैठा रहता था, मानो मैं उन्हें बहुत ध्यान से सुन रहा हूँ । उन बातों का कुछ तो प्रभाव मेरे हृदय पर पड़ा ही । मुझे याद है कि मेरे पाठशाला से आते हुए, जब मुझे रास्ते की स्त्रियां मेरे भाई या बहिन के देहान्त के बारे में कुछ सहानुभूति के शब्द कहतीं तो मैं कहा करता था 'चाची (या ताई) ! क्या करें; भगवान की मर्जी ।' यह सुनकर वे स्त्रियां कुछ आश्चर्य और प्रशंसा करती हुईं, कहतीं, "देखो ! छोटा सा बालक, कैसी गम्भीरता की बात कहता है ।" लेकिन असल में मेरी बात तो श्री० गुरूजी के उपदेशों की प्रतिध्वनि या गूँज होती थी । हां, पीछे जाकर, जब मैं कुछ समझने लगा तो जीवन की अनेक दुखमय घटनाओं में 'भगवान की इच्छा' का विचार ही मुझे ढाढ़स बँधानेवाला हुआ है ।

झगड़ों की रोक-थाम—घरों में कितने ही मौके ऐसे आते हैं, जब भाई-भाई का, या पिता पुत्र आदि का किसी विषय में विरोध या झगड़ा हो जाता है । ऐसे अवसरों पर बहुधा एक पक्ष, और कभी-कभी दोनों ही पक्ष श्री० गुरूजी से फर्याद करते । गुरूजी दोनों पक्षों को समझा बुझाकर उनका मेल करा देते। भारतवर्ष में देहात झगड़ों और मुकदमेबाजी के लिए बदनाम ही हैं । हमारा गांव इस विषय में साधारणतः अच्छे गांवों में गिना जाता था । तो भी ज़मीदारों और किसानों के, या महाजनों और किसानों के, अथवा किसानों-

किसानों के झगड़े समय-समय पर होते ही थे। कभी कभी श्री० गुरू जी की नेक सलाह से वे झगड़े सहज ही निपट जाते थे।

भूत प्रेत के भय का निवारण—गावों में अन्ध विश्वासों के साथ भूत-प्रेत का भय भी बहुत होता है। इसे दूर करने में भी श्री० गुरूजी ने अच्छा भाग लिया। आप समय-समय पर विद्यार्थियों को यह कहते और समझाते रहते थे कि आदमी भूत-प्रेत से व्यर्थ डरते हैं। वे कोई भयानक चीज़ नहीं हैं। आत्माएँ हैं, पर उनसे डरने की कोई बात नहीं है। स्वच्छ साफ रहने और अच्छे विचार वालों का वे कुछ बिगाड़ नहीं सकतीं। ऐसा उपदेश देनेवाले काफी संख्या में हों, तो गांवों से भूत का भय सहज ही दूर हो जाय।

इस विषय के एक उदाहरण का खुद मुझसे ही सम्बन्ध है। प्रायः रोगी रहने के कारण मैं भूत-प्रेत के विचारों का बहुत शिकार होता था। एक दिन की बात है। मैं लगभग आठ वर्ष का हूंगा। मुझे बुखार चढ़ा हुआ था। उसी समय मेरे मन में यह विचार समा गया कि भूत मुझे मारे डालता है। मैं डरकर बारबार चिल्लाता था। रात हो गयी। माता जी को चिन्ता थी कि अब समय कैसे कटेगा। गुरूजी आये, समाचार जानकर पहले आपने तरह-तरह की बातों से मेरा मन बहलाया, फिर अपार शक्तिशाली आठ भुजाओं वाली महिषासुर को मारनेवाली, सिंह की सवार, श्री दुर्गा देवी के विराट स्वरूप का चित्र मेरे सामने खींचा और मुझे समझाया कि यह देवी सब राक्षसों का नाश कर देती है। इसका ध्यान धरने पर कोई भूत आदि नहीं रह सकता। गुरू जी ने मुझे श्री दुर्गा का एक छोटा सा मन्त्र याद करा दिया, और मेरे मन में यह बात बैठा दी कि अब भूत आदि से मेरा कोई अनिष्ट नहीं हो सकता। हर्ष का विषय है कि न केवल मेरी वह रात ही अच्छी तरह कटी, वरन् उसके बाद भी मुझे कभी भूत-बाधा ने न सताया। श्री गुरूजी ने इसी प्रकार न मालूम कितनों को भूत के भय से मुक्ति दिलायी होगी।

वैद्यक-ज्ञान से उपकार——गांव में उस समय अकेले श्री गुरू जी ही शिक्षित और सुयोग्य वैद्य थे। आपके पास श्रीवेंकटेश्वर प्रेस आदि के कई एक बड़े बड़े ग्रन्थ थे। आप कुछ दवाइयां हर समय तैयार रखते थे। जब कभी किसी को विशेष रोग हो हाता तो आपको बुलाया जाता। गांववालों में ऐसी शक्ति और सुविधा कहाँ थी, जो छः मील दूर के शहर पानीपत से डाक्टर हकीम आदि को बुलाते और उसके इलाज का खर्च उठाते। अस्तु, मेरे लिए तो गुरु जी ने बहुत ही कष्ट उठाया है। बाल्यावस्था में, मैं बहुत रोगी रहता था और गुरू जी ने कितने ही बार एक-एक दिन में मुझे दो-दो तीन-तीन दफा देखा है, और कभी-कभी तो घंटों मेरी चारपाई के पास बैठे हैं। इसी प्रकार, गाँव के और भी न-मालूम कितने आदमी श्री गुरु जी की चिकित्सा के ऋणी रहे हैं। ग्राम-कार्यकर्ता सस्ती देशी घरेलू औषधियों का ज्ञान रखने से कितनी अधिक सेवा कर सकता है, इसका मुझे गुरु जी ने कैसा अच्छा अनुभव कराया है! मेरी माता जी को भी घर में साधारण औषधियाँ संग्रह करके रखने की आदत थी। इससे उनके द्वारा अनेक स्त्रियों को बहुत लाभ पहुंचा है। माता जी बहुधा श्री गुरुजी से औषधियों के विषय में सलाह ले लिया करती थीं।

स्वच्छता और सफ़ाई—गांव में लोगों को प्रायः कूड़ा-कचरा घर के पास ही फेंकने की आदत होती है; और, प्रायः बस्ती के पास ही कूड़े और गोबर आदि के ढेर लगे रहते हैं। गुरुजी इस विषय में ज़मीदारों और किसानों से समय-समय पर कहते रहते थे। कभी-कभी जब उन्हें इस विषय में अधिकारियों का भी सहयोग मिलता तो कुछ सफलता मिल जाती; नहीं तो आदमी उनकी बातों की उपयोगिता मानते हुए भी, उन्हें स्थायी रूप से अमल में न लाते। आदत का असर जो ठहरा।

श्री० गुरुजी समय-समय पर बालकों को तथा उनके माता पिता को स्वास्थ्य सम्बन्धी विषयों का भी ज्ञान कराते थे। यही नहीं, गर्मी के दिनों में आप बहुत से विद्यार्थियों की टोली बनाकर नदी (रजबाहे) पर ले जाते, जो बस्ती से एक फरलांग के फासले पर है। छुट्टी के दिन आप बाल-मंडली के साथ जमुना स्नान करने जाते। रास्ते में गुरुजी ब्रह्मी आदि जड़ी बूटियों का संग्रह करते। इससे विद्यार्थियों को भी इन चीज़ों की पहचान और गुण मालूम हो जाते।

विद्यार्थियों की वार्षिक परीक्षा—विद्यार्थियों के लिए परीक्षा का दिन एक बड़े उत्सव का सा दिन होता है। बालक साफ़ कपड़े पहनते हैं, मन्दिर में दर्शन करते हैं, देवी देवता को याद करते हैं, और कुछ तो सरस्वती, हनुमान या दुर्गादेवी आदि का प्रसाद भी बांटते हैं। हमारी वार्षिक परीक्षा कभी कभी तो गांव में ही हो जाती थी। किसी किसी साल डिप्टी इन्सपेक्टर साहब गांव में न आकर हमें ही शहर (पानीपत) आने की आज्ञा देते थे। इस दशा में हमें परीक्षा से पहले दिन वहां जाने की तैयारी करनी होती थी, श्री गुरू जी एक छकड़ा (लम्बी बैलगाड़ी) किराये कर लेते थे और पहर भर रात रहे, विद्यार्थियों को लेकर गांव से चल देते थे। छोटे बालक छकड़े में बैठते या लेटते थे; सामान भी उसी में रखा जाता था। स्वयं गुरू जी तथा बड़े विद्यार्थी पैदल चलते। थोड़ा दिन चढ़े तक शहर पहुंच जाते। वहां नहा धोकर तथा घर से लाया हुआ खाना खाकर परीक्षा-भवन में पहुँचते। प्रायः तीन-चार बजे तक परीक्षा से निपट कर घर लौटने की फिक्र करते।

ऐसे अवसर पर हमें शहरी विद्यार्थियों के जीवन की थोड़ी झलक मिल जाती थी। गाँव में कोई विद्यार्थी जब सुन्दर चटकीला कपड़ा पहनता, रहनसहन में शौकीनी, या बैठने उठने में कुछ हाव भाव दिखाता तो उसे 'शहरी' कहा जाता था।

गुरूजी का संतोष और स्वाभिमान—भारतवर्ष में ख़ासकर नीचे की श्रेणी पढ़ाने वाला अध्यापक समाज के उपेक्षित लोगों में से है, उससे लापरवाही का व्यवहार किया जाता है। वह एक वेतन पानेवाला नौकर है, और उसका वेतन इतना कम होता है, कि उसके परिवार का कुछ अच्छी तरह गुजारा नहीं हो पाता। ऐसी दशा में ग्राम-अध्यापक खुशामदी, तथा लोभी लालची हो जाय, और वह शिक्षा का काम केवल नौकरी बजा लाने के लिए ही करे, एवं विद्यार्थियों के संरक्षकों से बात-बात में ऊपर की आमदनी की आशा करे, तो क्या आश्चर्य! अनेक अध्यापक, खासकर ब्राह्मण अध्यापक अपना यह अधिकार ही समझते हैं कि द्वादशी, पूर्णमाशी, अमावस्या आदि के दिन विद्यार्थी उनके यहाँ सीधा (कुछ आटा, दाल, नमक, घी आदि) लावें, और श्राद्ध, तीज-त्योहार या उत्सव के अवसर पर उन्हें भोजन के लिए निमन्त्रण दें। हर्ष का विषय है कि श्री गुरूजी सात्विक वृत्ति के, और सन्तोषी सज्जन थे। आप 'सीधे' की इन्तज़ार में न रहते थे, और जीमना केवल उन्हीं घरों में स्वीकार करते थे, जहां बहुत शुद्धताई और सफाई का विचार रहता था, तथा जहां बहुत प्रेम और श्रद्धा होती थी।

आपकी सन्तोषी वृत्ति आपके स्वाभिमान की बड़ी रक्षा करती थी। आप अफसरों की सेवा में व्यर्थ की दौड़-धूप या हां-हजूरी नहीं करते थे। आप अपना काम अच्छी तरह करते थे, और अधिकारियों से यह आशा करते थे कि उनका व्यवहार और बोलचाल सभ्यता-पूर्ण हो। इस प्रकार जनता की, अपने सहयोगियों की, एवं अच्छे अफसरों की निगाह में आपकी बड़ी प्रतिष्ठा थी; हां, कभी-कभी ऐसे-वैसे अफसर से आपको कुछ कठिनाई भी उठानी पड़ी, पर इसकी आपने विशेष परवाह भी नहीं की।

स्त्रीशिक्षा-प्रेम—श्री० गुरूजी प्राचीन धर्मशास्त्रों को मानने-

वाले, पूजा पाठ करनेवाले, कर्मकांडी ब्राह्मण थे, पर आप स्त्री-शिक्षा के प्रेमी थे। आपने अपनी सहधर्मिणी श्रीमती भोली.देवी को हिन्दी की अच्छी शिक्षा दी, और अध्यापिका बनने के योग्य बनाया। यह बात अब से चालीस साल पहले की है, जबकि देश में स्त्री शिक्षा का प्रचार शहरों में भी बहुत कम था। इससे श्री गुरूजी के इस काम का महत्व साफ जाहिर है। आपने इसके साथ ही गाववालों में कन्याओं की शिक्षा के लिए अनुराग पैदा किया। इससे सन् १८९७ ई० में वहां पहली बार कन्या-पाठशाला स्थापित हुई। उसमें अध्यापिका के पद पर श्रीमती भोलीदेवी नियुक्त हुईं। इस प्रकार श्रीमती भोलीदेवी, जो अब तक अपने पति के कारण 'पण्डितानी' जो कहलाती थीं, अब खुद अपनी योग्यता और पद से भी 'अध्यापिका जी' कहलाने लगीं। वे लड़कियों को बहुत प्यार से पढ़ाती थीं; उनकी मिलनसारी, लगन और मेहनत से कन्या-पाठशाला में लड़कियों की सख्या जल्दी ही बढ़गयी, और मा बाप उनकी तरक्की को देखकर खुश होने लगे। पाठशाला को सब लोग चाहने लगे, और वह वहां स्थायी होगयी। वह अब भी चल रही है, और अपनी पहली अध्यापिका श्रीमती भोली देवी और उनके पति श्री० गुरू जी को यादगार का काम दे रही है।

गांव की पढ़ाई पूरी करनेवालों से गुरुजी का संबंध—बहुत से अध्यापक विद्यार्थियों से विशेष सम्बन्ध उतने समय तक ही रखते हैं जब तक कि बालक उनके पास पढ़ते हैं। पर श्री० गुरु जी का ऐसा भाव न था। उदाहरण के तौर पर मैं गुरु जी के पास सन् १९०१ ई० तक ही रहा, उस वर्ष तक आपके चरणों में बैठकर मैंने हिन्दी की पाँचवीं कक्षा पास कर गांव की पढ़ाई समाप्त हो गयी। बाद में मैं अङ्गरेज़ी पढ़ने के लिए, श्री भाई जगन्नाथ जी बी० ए०, एल-एल० बी०, वकील, करनाल, के पास चला गया। जाते समय गुरू जी ने मुझे उसी प्रकार बिदा किया, जैसे कोई अपने पुत्र को करता है। आपने मुझे शहर की शौक़ीनी और फ़ेशन तथा कुसंगति

आदि से बचने और मन लगा कर पढ़ने का आदेश किया। करनाल रहते हुए मैं साल में एक-दो बार गांव में अपनी माता जी के पास आता, तब गुरू जी मुझसे करनाल की सब बातें पूछते—घर पर मेरा मन लगा है या नहीं, मुझे किसी तरह की तकलीफ तो नहीं है, पढ़ाई कैसी होती है, तन्दुरुस्ती कैसे रहती है, इत्यादि। इस तरह की बातें गुरू जी सभी विद्यार्थियों से किया करते थे, जो बाहर पढ़ते थे, और कभी-कभी गांव आते थे। वैसे भी गांव के जो युवक बाहर कोई नौकरी या दूसरा धंधा करते थे, उनकी कुशल क्षेम जानने की गुरू जी को बड़ी इच्छा रहती थी।

गुरू जी की विदा, गांववालों की कृतज्ञता—

सन् १९१६ ई० में गुरूजी के भाई श्री० पंडित विद्याधर का देहान्त हो जाने पर गुरु जी को अपना तबादला अपने घर किरमच कराना पड़ा। इस प्रकार गुरुजी निरन्तर पच्चीस वर्ष तक, और आपकी सहधर्मणी लगभग बीस वर्ष हमारे गांव को अपनी सेवा से कृतार्थ करके, वहाँ से विदा हुए। उन्होंने जो महान कार्य किया, वह लिखने का विषय नहीं है, वह तो उस समय के ग्रामवासियों, खासकर पढ़नेवाले बालक बालिकाओं के हृदयों पर अंकित हैं। बावैल गाँव आपका अत्यन्त ऋणी है, और गांववाले समय-समय पर अपनी कृतज्ञता, वह मौन रूप से ही क्यों न हो, सूचित करने से नहीं चूके हैं। उन्होंने श्री० गुरुजी के हरेक हर्ष और शोक के अवसर पर यथाशक्ति सहयोग प्रदान किया है। अकसर गांववाले निर्धन होते हैं; धन की कामना से काम करनेवाले कार्यकर्ताओं को वे सन्तुष्ट नहीं कर सकते; परन्तु प्रेम-भाव से सेवा करनेवालों के प्रति श्रद्धा-भक्ति रखना वे खूब जानते हैं; और प्रेम का मूल्य प्रेम के रूप में चुकाने में वे कभी कंजूसी नहीं करते। यही कारण है कि सन्तोषी और निर्लोभी गुरूजी की, और गरीब गांववालों की खूब निभी है। परमात्मा ऐसी सब की निभाये।

अन्य बातें—सन् १९१६ ई० से अब तक गुरू जी प्रायः अपने गाँव किरमच ही रहे। यहाँ बारह वर्ष और अध्यापक का कार्य करके सन् १९२८ ई० में आपने अवकाश ग्रहण कर लिया। पश्चात् विशेष समय भजन-पूजन आदि में लगाने लगे; समय-समय पर सुविधानुसार यात्रा भी करते रहे। सन् १९३४ ई० में आपने अपनी पत्नी के साथ श्री बद्रीनारायण की यात्रा की। इसके अगले वर्ष श्रीमती भोलीदेवी स्वर्ग सिधारी। श्री० गुरुजी के तीन पुत्र हैं—श्री० ऊधोप्रसाद, माधोराम और गौतमप्रसाद। सब ने हिन्दी संस्कृत की शिक्षा पायी है; कुछ अंगरेज़ी का भी अध्ययन किया है। श्री० गुरुजी के अपने पुत्रों की ही तरह प्यारे अनेक शिष्य हैं। गाँव बाबैल से पचीस वर्षों में, तथा किरमच से बारह वर्षों में, कुल मिलाकर सैंतीस वर्षों में न-जाने कितने विद्यार्थियों ने आपके चरणों में बैठकर विविध प्रकार की प्रारम्भिक शिक्षा पायी है। वे सब अब बड़े होकर कहाँ कहाँ क्या-क्या कार्य कर रहे हैं, यह बतलाना यहां न अभीष्ट ही है, और न सम्भव ही। मेरे सहपाठियों में श्री पंडित ब्रह्मानन्द जी और लाला चिरंजीलाल जी का आपसे खास तौर से सम्बन्ध बना रहा है।

श्री० गुरू जी सरल स्वभाव के, सादगीपसन्द, संयमी और संतोषी हैं। इस समय तो आप सांसारिक या दुनियावी बातों को छोड़कर ज्यादातर भगवान के भजन में लगे रहते हैं। पिछले दिनों आपने एक पत्र में मुझे लिखा—"......रुपया भेजने का कष्ट न उठावें।......मैं हर प्रकार से संतुष्ट हूँ! अब सिवाय ईश्वर-आराधन के कोई काम नहीं है, क्योंकि चतुर्थ आश्रम है। आनन्द से रहो।" भारतवर्ष में वर्णाश्रम धर्म माननेवाले हिन्दुओं में जितने आदमी, आयु के विचार से चौथे आश्रम के हैं, उनमें से कितने हैं, जो इस आश्रम का व्यवहार में पालन करते हैं; और जो "हर प्रकार से सन्तुष्ट" हैं और जिन्हें बुढ़ापे में "सिवाय ईश्वर-पूजा के कोई काम नहीं" है।

विशेष वक्तव्य—हमारी बड़ी इच्छा है, हम हृदय से चाहते हैं कि श्री गुरुवर पंडित अयोध्याप्रसाद जी जैसी लगन और प्रेम वाले अध्यापक भारतवर्ष के गाँव-गाँव में हों, जो विद्यार्थियों को अपनी सन्तान की तरह समझें, उनके दुख सुख के साथी हों, उन्हें स्वास्थ्य या तन्दुरुस्ती की बातें सिखावें, नीति और सदाचार का ज्ञान करावें, और गांव वालों के झगड़े दूर कर उनमें मेलजोल और एकता बढ़ाएं। ऐसे अध्यापकों से ही इस देश की, जो असल में गांवों का देश है, सच्ची उन्नति होगी। शुभम !

—o—

छठी बात

ग्रामोपयोगी साहित्य

पिछले लेख में इस बात का विचार किया गया है कि गांवों में शिक्षा-प्रचार के लिए किस तरह के सुयोग्य अध्यापकों की आवश्यकता है। ग्रामसुधार के वास्ते एक दूसरी खास जरूरत यह है कि गांव वालों में अच्छे साहित्य का प्रचार हो, जिससे उनका ज्ञान बढ़े और वे खुद अपने सुधार का विचार करने लगें, तथा दूसरे ग्राम-सेवकों की दिलोजान से मदद करें।

हमारे बहुत से गांवों में साधारण पाठशालाएँ भी नहीं हैं, फिर उनमें पुस्तकालय या वाचनालय होने की बात ही क्या है ! जिन गांवों में शिक्षा-संस्थाएँ और उनके पुस्तकालय हैं भी, उनमें भी ज्यादातर किस्से-कहानियों, उपन्यासों और नाटकों

की पुस्तकों की भरमार रहती है, जो चटकीली भड़कीली होती हैं, जिनसे बेचनेवालों को ख़ूब मुनाफा मिलता है। वहां ऐसा साहित्य तो अकसर रहता ही नहीं, जिससे पाठक अपने रोजमर्रा काम में आनेवाली बातें सीखें, उन्हें अपने नागरिक कर्तव्यों और अधिकारों का ज्ञान हो, वे पंचायत, जिला-बोर्ड, पुलिस और राजप्रबन्ध की मोटी मोटी बातों की जानकारी हासिल करें, और, उन्हें अपना जीवन अच्छा बनाने में मदद मिले।

गांववालों के पास उपयोगी साहित्य पहुंचाने के सम्बन्ध में जो सज्जन कुछ ठोस काम करना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि पहले अपने प्रान्त या देशी राज्य की परिस्थिति के अनुसार विविध उपयोगी विषयों की सबसे अच्छी लगभग २५० पुस्तकों की एक सूची जानकार या होशियार आदमियों से तैयार करावें। इस सूची में नागरिकता, अर्थ-नीति, खेती, बागवानी, घरेलू धन्धे, स्वास्थ्य, समाज-सुधार आदि विषयों की पुस्तकें होनी चाहिएं। इस तरह की कुछ सूचियां बनी भी हैं, उनसे मदद ली जा सकती हैं। प्रत्येक गांव के पुस्तकालय में पहले ऐसी सूची की ही पुस्तकें ली जाने की व्यवस्था हो, और जब तक इस सूची की सब पुस्तकें उसमें न आजायँ, दूसरी कोई पुस्तक न ली जाय। जिन गांवों में पुस्तकालय हैं, उनकी जांच की जानी चाहिए, जहां कहीं नैतिक दृष्टि से कोई खराब पुस्तक इस समय मौजूद हो, उसे खारिज कर दिया जाना चाहिए। और, जिन गांवों में पुस्तकालय नहीं हैं, उनमें नये पुस्तकालय कायम किये जाने चाहिएं। हां, पुस्तकालय की स्थापना केवल नाम का

दखने के लिए नहीं करनी है; गांववालों का, उपयोगी पुस्तकें पढ़ने के लिए, उत्साह बढ़ाना होगा। दुर्भाग्य से गांव में ऐसे ही लोगों की संख्या ज्यादह होती है, जो पढ़ना नहीं जानते। ऐसे आदमियों को पुस्तकें पढ़कर सुनाने और समझाने का भी इन्तजाम किया जाना चाहिए। आशा है, बहुत से गांवों के लिए तो ग्राम-अध्यापक ही काफी कार्य कर सकेंगे; दूसरे स्थानों में कुछ ग्राम-सेवक मिल सकेंगे, जो यह कार्य निष्काम भाव से, बिना वेतन, या साधारण पारिश्रमिक या मेहनताना लेकर, कर सकेंगे। छोटे गावों में से जिनकी बस्तियां पास पास में, मिली हुई हैं, उनमें तो यह काय आसानी हो सकता है। जो छोटे छोटे गांव दूर दूर हैं, उनमें काम करने के लिए कुछ प्रचारकों का प्रबन्ध करना होगा। ग्राम-पुस्तकालयों में एकदम बहुत अधिक द्रव्य खर्च करना न पड़े, इसके लिए गश्ती या भ्रमणकारी पुस्तकालयों की परिपाटी बहुत उपयोगी हो सकती है। ग्राम-सुधार चाहने वालों को इन बातों पर विचार करके कुछ क्रियात्मक या अमली काम करना चाहिए।

—०—

नोट—हमारी 'हिन्दी में अर्थशास्त्र और राजनीति साहित्य' पुस्तक में ग्रामोद्योग, ग्राम्य अर्थशास्त्र, सहकारिता, और पंचायत आदि सम्बन्धी पुस्तकों का भी परिचय दिया गया है। इससे गांवों के लिए उपयोगी पुस्तकों का चुनाव करने में अच्छी मदद मिल सकती है।

सातवीं बात

ग्राम-सेवा

न तन-सेवा, न मन सेवा,
न जीवन और धन-सेवा।
मुझे है इष्ट जन-सेवा,
सदा सच्ची भुवन-सेवा॥

गावों की उन्नति या ग्राम-सुधार एक बड़ा और व्यापक विषय है। इसमें बहुत सी बातें गिनी जाती हैं। मिसाल के तौर पर इसके अन्दर गाँव वालों के स्वास्थ्य या तन्दुरुस्ती, सफ़ाई, चिकित्सा वा इलाज, शिक्षा-प्रचार, पुस्तकालय और वाचनालय कायम करना, किसानों को ऋण या कर्ज से छुटकारा दिलाना, उन्हें खेती सम्बन्धी सुधारों का ज्ञान कराना, छोटे छोटे उद्योगधन्धों और घरू शिल्प या कारीगरी की उन्नति, कुएं तालाब और सड़कें बनवाना, आदि वे सब काम शामिल हैं, जिनसे गाँववालों को सुख मिले, उनकी सुविधाएं और आमदनी बढ़े, वे अपना और अपने परिवार का अच्छी तरह पालन पोषण कर सकें, वे अपनी संतान को लिखा पढ़ा सकें। उनकी सामाजिक और धार्मिक रीति रस्मों में सुधार हो, वें अन्ध विश्वासी न रहे, और हर तरह से आदमी के योग्य, अच्छा जीवन बिता सकें।

ये कार्य केवल जाप्ते की पाबन्दी करने के लिए, अफसरों के गांवों में दौरा करने से नहीं हो सकते। बहुत से सरकारी

कर्मचारी अफसरी ढंग से गांव में जाते हैं, गांव के आदमियों को कुछ उपदेश की बातें सुना देते हैं। गांव वालों को इनकी खूब खातिर-तवाजा (अतिथि-सत्कार) करनी होती है, और ये अनेक बार उन पर भार-स्वरूप हो जाते हैं। दूसरे, ये कर्मचारी अपने निर्धारित वेतन के अलावा खूब पैसा कमाते हैं, और इस प्रकार ये उस शासन पर अपना बोझ बढ़ाते हैं, जिसका खर्च अधिकांश में गरीब गांव वालों की गाढ़ी कमाई से चलता है।

ग्राम-संगठन की सच्ची सफलता के लिए आवश्यकता है ऐसे कार्यकर्ताओं की, जिनके हृदय में सेवा-भाव कूट-कूट कर भरा हो; जो गांव वालों में अहदी बन कर न रहे, वरन् उनसे हिलमिल कर उनके संगी साथी होकर रहे। जो कार्यकर्ता गांव में रहना तक पसन्द नहीं करते, जिन्हें ग्राम-जीवन से मानो घृणा है, वे ग्राम-सुधार क्या कर सकते हैं? ये लोग गांव में थोड़ी देर के लिए जाते हैं तो मानो बड़ा त्याग और उपकार करते हैं। यह ठीक है कि आजकल अधिकांश गांवों में न गन्दे पानी के बहने की ठीक व्यवस्था है, और न कूड़ा-कचरा ही बस्ती से दूर डालने का इन्तजाम है। डाक तार की व्यवस्था न होने से वहां के आदमियों को ताजे समाचारपत्र समय पर नहीं मिलते, जरूरी चिट्ठियां भी कई-कई दिन बाद—प्रायः हफ्ते में केवल दो बार—मिलती हैं। न गांव में चलने के लिए अच्छी सड़कें हैं, न रास्ते में रोशनी होती है। इस प्रकार इसमें सन्देह नहीं कि वर्तमान अवस्था में गांव सभ्य और शिक्षित पुरुषों के रहने योग्य प्रतीत नहीं होते। परन्तु यदि यह सोच

जाय कि जब गांवों में समुचित सुधार हो जायगा तब हम वहां जाकर रहेंगे, तो चिरकाल तक वह समय ही नहीं आएगा। गांवों को सभ्य आदमियों के रहने के योग्य बनाने के लिए इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि कठिनाइयां और असुविधाएँ सह कर भी कुछ योग्य आदमी वहां जाकर विशुद्ध सेवा-भाव से रहें। त्यागी और तपस्वी स्वयंसेवक जिस स्थान पर रहें, वहां की उन्नति होने में कोई संशय ही नहीं। हमारे गांवों का कायाकल्प होगा, वे स्वस्थ और सुन्दर होंगे, और सुरुचि-पूर्ण दृश्यों से तथा धन धान्य से पूर्ण होंगे वे सुख और शान्ति देनेवाले बनेंगे। लेकिन कब ? जब इस कार्य में सुयोग्य सच्चे कार्यकर्ता तन मन से लग जायंगे, और इसके लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देंगे।

अब सवाल यह है कि ऐसी योग्यताओं वाले कार्यकर्ता कैसे मिलें। थोड़े समय के लिए कुछ कार्यकर्ता तो आसानी से मिल सकते हैं, पर ग्राम-सुधार का कार्य ऐसा है, जिसके लिए काफी सेवक हों और उनका सिलसिला बराबर बना रहे। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए हमारा विचार हिन्दुओं के वानप्रस्थ आश्रम की ओर जाता है।

आदमी की जिन्दगी को निजी तथा सामाजिक दृष्टि से अच्छी तरह बिताने के लिए हिन्दू शास्त्रों ने उसे चार हिस्सों में बांटने की बात कही है—ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वान-प्रस्थ आश्रम, और संन्यास। लेकिन अब यह बात जानने के लिए ही रह गयी है। वर्तमान व्यावहारिक जीवन से तो, मानो

इसका कुछ सम्बन्ध ही नहीं! हम हर रोज देखते हैं कि ज्यादहतर क्या, अठानवे निन्नानवे फी सदी हिन्दुओं के लिए दो ही आश्रम रह गये हैं—ब्रह्मचर्य और गृहस्थ। इन दोनों की भी कैसी दशा है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। लड़की या लड़का जब तक कुंवारे रहते हैं, ब्रह्मचर्य आश्रम में मान लिये जाते हैं, चाहे वे इस आश्रम के नियमों का पालन कितने ही थोड़े अंश में क्यों न करते हों! विवाह होजाने पर वे गृहस्थ क़रार दे दिये जाते हैं; और चाहे वे पचास वर्ष की उम्र तक जीवित रहें, या साठ सत्तर वर्ष की उम्र तक, वे गृहस्थ ही बने रहेंगे; उनकी दिनचर्या वही रहेगी। उन्हें अपनी तथा अपने बाल बच्चों आदि की विविध आवश्यकताओं की चिन्ता, धन-तृष्णा, और सांसारिक कामनाओं से छुटकारा नहीं। अकसर मरते दम तक उनके ये ही विचार रहेंगे कि अमुक आदमी का इतना रुपया देना, उससे इतना लेना; उसकी नालिश करनी, अमुक बच्चे का विवाह शादी करना, अमुक सामाजिक रीति-भांति पूरी करनी, अमुक आदमी से बदला लेना, या उसे किसी प्रकार नीचा दिखाना। हमारा जीवन शांति से बीतता नहीं; मृत्यु के समय हमें शान्ति क्यों मिलने लगी!

इसका उपाय हमारे पूर्वजों, ऋषियों, और महात्माओं ने हमें बता रखा है—"उचित समय पर अपनी ही मरजी से गृहस्थाश्रम को छोड़कर वानप्रस्थाश्रम स्वीकार करो, सांसारिक विषयों को उस समय से पहिले ही छोड़ दो, जबकि मौत तुम्हें इनको छोड़ने के लिए मजबूर करेगी। मरने से पहले काफी

समय इस तरह व्यतीत करो, जिससे तुम्हारी आत्मा की उन्नति हो; और, तुम्हारे द्वारा दूसरे भाइयों की कुछ सेवा-सुश्रूषा हो। तुम्हारा जीवन, अकेला तुम्हारे ही लिए न रहकर ग्राम, नगर, राष्ट्र तथा विश्व के लिए हो।" पर आज हम इन बातों को कहाँ सोचते हैं!

हां, यह कठिनाई भी अवश्य है कि, मौजूदा बदली हुई हालत में प्राचीन शैली के अनुसार वानप्रस्थ के नियमों का पालन करना, आम जनता के लिए, असम्भव है। आजकल वे सार्वजनिक वन, उद्यान कहां, जिनकी पैदावार से लाखों, करोड़ों वानप्रस्थियों का भरण-पोषण सहज ही हो जाय! इस समय तो भूमि के एक-एक वर्ग इञ्च के टुकड़े पर किसी आदमी या संस्था का अधिकार, हक़ या क़ब्ज़ा है, अथवा होता जा रहा है। तो क्या इतने वानप्रस्थी भिक्षा मांगकर अपना निर्वाह करें? ग़रीब भारत के लिए, तो साधु फ़कीरों की वर्तमान संख्या ही भार-स्वरूप है, उसे और बढ़ाने का विचार कौन विवेकशील पुरुष करेगा!

वानप्रस्थ में न आने से मुसीबत है, तो इसमें आने का मार्ग भी बन्द है! समस्या कैसे हल हो? क्या हम लोगों के लिए जो शहरों और नगरों के शोरगुल में रहते हैं, यह अच्छा न होगा कि, अपनी आयु के चालीस-पैंतालीस वर्ष पूरे करने पर हम गांवों की ओर लौट चलें; और, वहां जाने का उद्देश्य हो अपने लिए शान्ति प्राप्त करना और गांववालों की सेवा-सुश्रूषा करना; मन से, वचन से और कार्य से उनकी भलाई करना; उन

की उन्नति की बातें सोचना; और उनके सहयोग से उपयोगी योजनाओं को अमल में लाना।

ग्राम-सुधार के विषय में समय-समय पर बहुत से लेख लिखे जाते हैं, व्याख्यान होते हैं, परन्तु कुछ असली कार्य नहीं होता! हो भी कैसे? ग्रामों का मस्तिष्क और धन शहरों में खिंचा आ रहा है। उनका दिवाला निकल रहा है। वे नष्ट किये जाकर उनकी भस्म से नगरों का निर्माण तथा वृद्धि हो रही है। जब तक इस घातक क्रिया का अन्त न होगा, ग्राम-सुधार की कोई भी योजना सफल नहीं हो सकती। और, तब तक हमारी, देश या राष्ट्र की उन्नति की कोशिश व्यर्थ सी है। राष्ट्र थोड़े से नगरों का ही नहीं है। भारतवर्ष में शहर या कस्बे पौने तीन हजार हैं, और उनकी आबादी सिर्फ़ पांच करोड़ है। यहां के बाक़ी चौंतीस करोड़ आदमी तो गांवों में ही रहते हैं, जिनकी संख्या साढ़े छः लाख है। हज़ारों ग्रामों को उजाड़कर एक बम्बई, कलकत्ता या नयी दिल्ली की सजावट करने से देशोन्नति नहीं होगी। ऊँची अट्टालिकाओं, विशाल राजकीय भवन, क़िले, महल, राजपथ, बिजली या गैस की रोशनी, ट्राम, मोटरकार आदि की वृद्धि पर सन्तोष नहीं किया जा सकता। ये तो हमारे दुःख और शोक का कारण हो रहे हैं, जबकि इनके लिए ख़र्च किया जानेवाला द्रव्य भूख प्यास से व्याकुल गांव वालों के रोटी कपड़े बिकवाकर प्राप्त किया जाता है।

शहरी वातावरण में रहनेवालों को अपनी आयु का अन्तिम क्रियाशील भाग गांवों में व्यतीत करने की बात

सुहाएगी नहीं ! लेकिन खुद उनके हित के लिए तथा देशोन्नति के लिए इस पर विचार किया जाना आवश्यक है। बहुत से नगर-निवासियों के लिए तो ग्रामप्रस्थ उस जीवन के प्रायश्चित का भी काम दे सकता है, जो उन्होंने राष्ट्र अर्थात् ग्राम-समूह को भूले हुए व्यतीत किया है। यह लज्जा का विषय है कि अनेक आदमियों को, जन्म से गांव के होने पर भी, नगर में रहने का ऐसा अभ्यास हो गया है कि उन्हें अपने गांव में एक दिन के लिए जाना अच्छा नहीं लगता।

ग्रामप्रस्थ स्वयं ग्रामवासियों के लिए भी अनावश्यक नहीं। एक खास उम्र में घर गृहस्थी के कार्यों का मोह कम करके वे अपना शेष जीवन गाँववालों के हित में लगावेंगे, तो उनका ग्राम-ऋण का भार बहुत कुछ हल्का होगा, और, उन्हें सेवा करने से शान्ति और आनन्द की प्राप्ति होगी। शुभम्।

—o—

आठवीं बात

हमारा आदर्श गाँव

गांव (या नगर) हमारा 'सामाजिक और राजनैतिक घर' है। यहां रहनेवाले सब आदमियों से हमारा सम्बन्ध है। वे सब हमारे नागरिक भाई हैं ! यह बात जितनी नगर या कस्बों के बारे में कही जा सकती है, गावों के बारे में उससे ज्यादह लागू होती है। गांव की तो गली-गली से हम परिचित होते हैं। यहां नदी नाले, टीले, खेत, जंगल और

चरागाह सब से हमें प्यार होता है। यहां के सब आदमियों से हमारी थोड़ी बहुत पहचान होती है। सब से हम आसानी से मिल सकते हैं। गांव की तरक्की और सुधार करना और यहां रहनेवाले सब नागरिक भाइयों से सहयोग और मेल की भावना रखना हमारा परम कर्तव्य है। यह हमारी सभ्यता की कसौटी है।

पिछले लेखों में गांव सम्बन्धी कुछ बातों का विचार किया गया है। अब हम यह विचार करते हैं कि गांव का पूरा स्वरूप क्या हो, गांव वालों का जीवन किस तरह का हो, गांव के बारे में हमारा आदर्श क्या हो, जिसे प्राप्त करने लिए सब कार्यकर्ता और अधिकारी मिलजुल कर काम करें।

जैसा कि हमारी 'विश्व संघ की ओर' पुस्तक में कहा गया है, गांवों की मौजूदा दुर्दशा मनुष्य जाति के लिए एक कलंक है—उसका जल्दी से जल्दी अन्त किया जाना चाहिए। गांवों की बहुत सी जरूरतें तो ऐसी हैं कि उनका पूरा होना गांव की जनता के बहुत छोटे-छोटे हिस्सों में बँटे और बिखरे हुए होने की हालत में मुमकिन नहीं है। मिसाल के तौर पर छोटे खेड़ों में तरह तरह की खाने पहिनने आदि की चीजों के भंडार, अलग-अलग स्कूल, और अस्पताल आदि कैसे कायम किये जा सकते हैं! और यदि किये भी जायँ तो इन पर कितना अधिक धन खर्च करना पड़े! इसलिए जो गांव बहुत छोटे-छोटे हों, उनके समूह बना देने चाहिएँ, जिससे हर ग्राम-समूह अपनी मामूली जरूरतों के लिए बाहर के गांवों के आसरे न रहे। इस

तरह का ग्राम-समूह करीब दो तीन मील लम्बा और करीब इतना ही चौड़ा हो। उसकी आबादी लगभग डेढ़ दो हज़ार हो सकती है। आने जाने के साधन की उन्नति होने पर यह क्षेत्र कुछ बढ़ सकता है, पर बहुत अधिक बढ़ाना भी ठीक नहीं।

यह कहा जा सकता है कि ग्राम-सुधार का काम बहुत बड़ा है। इसे ठीक-ठीक करने के लिए बहुत धन चाहिए; वह कहां से आवे ? इस बारे में नीचे लिखी बातें ध्यान में रखनी चाहिएँ। राज्य की कुल आमदनी कितनी है, और आबादी कितनी है। इस तरह हर हज़ार आदमी पीछे कितना औसत ख़र्च किया जा सकता है। हर ग्राम या ग्राम-समह के लिए खर्च का अन्दाजा करते समय जहां तक हो सके इस औसत का ख़याल रखा जाय। विशेष हालतों में एक क्षेत्र के लिए औसत से कुछ कम-ज्यादह भी ख़र्च कर सकते हैं। गांव की और शहर की जनता में इस समय जो बहुत ज्यादह भेद-भाव रखा जाता है, और गांववालों से जो सौतेली मां का सा व्यवहार होता है, वह बिलकुल अनुचित है।

जो लोग शहरों में रहते आये हैं, या शहरों की ही सभ्यता को सभ्यता मानते हैं, उन्हें यह बात रुचेगी नहीं। लोगों की यह धारणा बन गयी है कि नगर तो विद्या, सभ्यता, शिक्षा और स्वास्थ्य आदि के केन्द्र होने ही चाहिएँ; गांवों का चाहे जो हो। किन्तु हम गांव और नगर दोनों को देश का एक बराबर अंग और दोनों की जनता को देश की संतान समझकर जहाँ तक बन पड़े समानता की बात कह रहे हैं। यदि गाँव के आदमी भूखे

मर रहे हैं, और अपना तन ढकने के लिए भी कपड़ा नहीं पा रहे हैं, और इस पर भी नगरों में विलासिता के साधनों में धन खर्च किया जा रहा है तो यह बिलकुल अंधेर है। जिन चीज़ों से नगरों के इने गिने आदमी लाभ उठाते हैं, उनके खर्च में गांव वालों को भी हिस्सेदार बनाना सरासर अन्याय है। इसीलिए गांवों के सुधार और उन्नति के लिए प्राय: रुपये की कमी रहती है इसका इलाज यही है कि हम अपना दृष्टिकोण बदलें।

प्राचीन काल में साधु-संत, ऋषी-मुनि गांवों में रहते थे; अब भी कुछ भले लोगों को गांव में रहना पसन्द है। आवश्यकता है कि आजकल के 'सभ्य' आदमी मानवता के लिए गांवों में रहें, और गांवों का सांस्कृतिक धरातल ऊंचा उठाने में सहायक हों। गांवों और शहरों की हालत में जो भयङ्कर विषमता है, उसका अन्त होना ही चाहिए। जहां तक हो सके, गांवों की अच्छी बातों की—प्राकृतिक दृश्य, हरियाली, ताज़ी हवा, सरल जीवन आदि की—व्यवस्था नगरों में हो। और, नगरों की सड़क, डाक, अस्पताल आदि अच्छी बातों की व्यवस्था गांवों में भी होनी चाहिए। जो बातें बुरी हैं, सदाचार के खिलाफ़ और मानवता के लिए हानिकर हैं, उन्हें गांवों और नगरों दोनों से हटाना चाहिए।

हमें एक आदर्श गाँव की कल्पना अपने सामने रखनी चाहिए और उसे अमल में लाने की लगातार कोशिश करते रहना चाहिए। महात्मा गांधी के विचार से हर आदमी को साधारण भोजन के साथ-साथ हर रोज़ आध सेर दूध और दो

तोले घी या ढाई तोले मक्खन, साग तरकारी और कुछ मौसमी फल मिलने ही चाहिएँ, कपड़ा भी आवश्यकतानुसार होना चाहिए। महात्मा जी अपनी तरह सबके लिए एक छोटी सी धोती पहनने की बात नहीं कहते। पुरुषों के लिए वे कुर्ता, ओछी धोती और टोपी ज़रूरी समझते हैं; स्त्रियों के लिए वे पञ्जाब की पोशाक—कुर्ता दुपट्टा और सलवार अच्छी मानते हैं। आजकल गाँव वालों का जैसा अपूर्ण भोजन वस्त्र है, उसे देखते हुए यह बात अव्यवहारिक मालूम होती है। परन्तु मौजूदा हालत अस्वाभाविक और अन्यायपूर्ण है। इसका जल्दी-से-जल्दी अंत करना ही होगा। जैसा कि महात्मा जी ने कहा है, देहातों में हम उचित सुधार करने में तब तक सफल नहीं हो सकते, जब तक हमारे हाथ में हकूमत की बागडोर न हो। लेकिन हमारी तपस्या और सेवा बहुत ऊंची हो जाय तो हमें हकूमत की बाट देखने की भी ज़रूरत नहीं है। उसके बिना भी बहुत-कुछ किया जा सकता है।

पशुओं और खेती आदि के सम्बध में महात्मा जी का मत है कि 'मवेशियों के बारे में गाँव वालों को परस्पर सहयोग से काम लेना चाहिए। उन्हें गांव भर में उतने ही मवेशी रखने चाहिए, जितने की ज़रूरत हो। जानवरों के रखने का इन्तजाम सारे गांव की तरफ़ से शराकत में किया जा सकता है। अगर गांव वाले इस तरह मिलजुल कर काम करना सीखें तो बहुत तरक्की कर सकते हैं। इसी तरह खेती में भी सहकारी तरीके से यानी मिलजुल कर काम करना चाहिए। गांव की सारी

पैदावार का बँटवारा भी मेहनत करनेवालों में ही होना चाहिए। इसका मतलब यह नहीं है कि मेहनत का हिसाब नहीं रहेगा; हरेक की मेहनत का हिसाब तो ठीक-ठीक रखना ही पड़ेगा। जब तक हम यह नहीं कर सकते तब तक सत्य और अहिन्सा की दृष्टि से आदर्श समाज तक नहीं पहुँच सकते और, अहिन्सक समाज मेलजोल और सहयोग पर ही क़ायम हो सकेगा।'*

महात्मा जी हर गांव में एक तरह का लोकराज्य (रिपब्लिक) क़ायम करना चाहते हैं। उनका कहना है कि दो-चार साल के लिए लोग किसी एक आदमी को अपना सरदार मान सकते हैं लेकिन बाद में उसके बिना भी काम चला सकते हैं, क्योंकि लोकराज्य में कोई सरदार होता ही नहीं। लोग एक दूसरे को नज़दीक से जानते हैं। आजकल के से चुनावों का सा किस्सा नहीं होता, जहां लाखों, करोड़ों 'वोटर' होते हैं, और उन्हें पता ही नहीं होता कि उम्मेदवार कौन शख्स है। लोगों के पसन्द का सरदार उन्हें दबा नहीं सकता। पुराने ज़माने में हमारे यहां इसी तरह की कोई तजबीज थी।

जब तक गांव की जनता के उद्धार का ठीक ठीक प्रयत्न न होगा, देश का भला नहीं हो सकता। इस समय जिस तरह जाति-पांति, धर्म, राष्ट्रीयता आदि की कृत्रिम या नक़ली दीवारों से मानवता का गला घुट रहा है, उसी तरह ग्रामीण

* सहकारिता के विषय में विशेष जानने के लिए देखिए, भारतीय ग्रन्थमाला से प्रकाशित 'भारतीय सहकारिता आन्दोलन' पु... ।

और नागरिक जनता का भेदभाव देश को बहुत हानि पहुंचा रहा है। नगरों में रहनेवालों को शिक्षा, स्वास्थ्य आदि की, और अपनी शक्तियों के विकास की, जितनी सुविधाएँ हैं, उनकी तुलना में ग्रामवासी बन्धुओं का क्या हाल है! और, यदि नगरों की अधिकांश जनता शिक्षित, सुखी सम्पन्न हो जाय, और ग्रामों की अधिकांश जनता मूर्ख, रोगी, और दुखी रहे तो भारत जैसे देश का कल्याण कैसे हो सकता है! यह विषमता अब असह्य है।

थोड़े से, नगरों के आदमी चाहे जितने योग्य और कुशल क्यों न हों, उन्हें देखकर सारे देश को उन्नत नहीं कह सकते। हमें गांवों की जनता का जीवन, रहन सहन आदि ऊंचा उठाना है। हमें अपने-अपने गांव को आदर्श गांव बनाना है, और अपने पास के दूसरे गावों के आदर्श बनने में मदद देनी है। इस विचार से हमें अपना कर्तव्य पालन करने में जुट जाना चाहिए।

— o —

विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी पुस्तकें

१—भारतीय शासन—भारतवर्ष की शासन-पद्धति जानने के लिए आइने का काम देनेवाली ! नवाँ संस्करण। मूल्य १॥)

२—भारतीय विद्यार्थी विनोद—भाषा, विज्ञान, भूगोल, इतिहास गणित आदि दस पाठ्य विषयों की उपयोगिता। मातृभूमि, जीवन का लक्ष्य, आदि विषयों का विवेचन। तीसरा संस्करण। मूल्य ॥=)

३—नागरिक शिक्षा—सेना, पुलिस, न्याय, जेल, कृषि, उद्योग-धन्धे, शिक्षा स्वास्थ्य आदि विषयों का सरल भाषा में नागरिकोपयोगी विचार। चौथा संस्करण। मूल्य ॥≡)

४—नागरिक कहानियाँ—निर्वाचन, मताधिकार, ग्राम-सुधार, कर्तव्यपालन, अस्पृश्यता-निवारण और शिक्षा-प्रचार आदि विषयों की प्रभावशाली कहानियाँ। मूल्य ॥=)

५—मातृ बन्दना—देश भक्ति की शिक्षा देने वाली, और जननी जन्मभूमि की पूजा पाठ के लिए उपयोगी। मूल्य ।=)

६—हमारी राष्ट्रीय समस्याएं—राष्ट्र-भाषा, राष्ट्रीय साहित्य, कौमी झण्डा; राष्ट्रीय गान, राष्ट्र-लिपि, कौमी तालीम, हिन्दुस्तान की आज़ादी आदि पर भावपूर्ण विचार। सातवाँ संस्करण। मूल्य १)

७—भावी नागरिकों से—इसमें विद्यार्थी, किसान, मज़दूर, लेखक, अध्यापक आदि का कार्य आरम्भ करनेवाले सभी नागरिकों के लिए बहुत उपयोगी विचार हैं। मूल्य, सवा रुपया।

८—इंगलैंड का शासन और औद्योगिक क्रान्ति—हरेक अध्याय के अन्त में उसका सारांश तथा आवश्यक प्रश्न भी दिये गये हैं। मूल्य, एक रुपया।

पूरी सूची आगे कवर पर देखिए।

भारतीय ग्रन्थमाला

भारतीय शासन (नवाँ संस्करण)	...	१॥)
भारतीय विद्यार्थी विनोद (तीसरा संस्करण)	...	॥=)
हमारा राष्ट्रीय समस्याएँ (सातवाँ संस्करण)	...	१)
हिन्दी में अर्थशास्त्र और राजनीति साहित्य (दूसरा संस्करण)		२)
भारतीय सहकारिता आन्दोलन (दूसरा संस्करण)		२॥)
भारतीय जागृति (चौथा संस्करण)	...	२)
विश्व वेदना	...	॥।=)
निर्वाचन पद्धति (चौथा संस्करण)	...	॥)
नागरिक कहानियाँ ...	...	॥=)
राजनीति शब्दावली (दूसरा संस्करण)	...	॥।)
नागरिक शिक्षा (चौथा संस्करण)	...	॥≡)
ब्रिटिश साम्राज्य शासन (चौथा संस्करण)	...	१)
श्रद्धाञ्जलि	...	॥=)
भव्य विभूतियाँ	...	॥=)
अर्थशास्त्र शब्दावली (दूसरा संस्करण)	...	१)
कौटल्य के आर्थिक विचार (दूसरा संस्करण)	...	॥=)
अपराध चिकित्सा	...	१॥)
पूर्व की राष्ट्रीय जागृति	...	१॥)
भारतीय अर्थशास्त्र (तीसरा संस्करण)	...	३॥)
साम्राज्य और उनका पतन	...	१)
मातृ वन्दना (तीसरा संस्करण)	...	।=)
देशी राज्य शासन	...	३॥)
विश्व संघ की ओर	...	२॥)
भावी नागरिकों से	...	१)
इंगलैंड का शासन और औद्योगिक क्रान्ति	...	१)
मनुष्य ज्ञान की प्रगति	...	३॥)

भगवानदास केला, भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज, प्रयाग